किशोर ग्रन्थमाला ५१

वङ्गलिपितः संगृहीतम्

योनितन्त्रम्

हिन्दी टीका सहितम्

सम्पादक एवं व्याख्याकार
पं. हरिहरप्रसाद त्रिपाठी

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

किशोर ग्रन्थमाला

५१

***

वङ्गलिपितः संगृहीतम्

योनितन्त्रम्

हिन्दी टीका सहितम्

सम्पादक एवं व्याख्याकार

स्व० पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठी

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय, वि०सं० २०७४, सन् २०१७
मूल्य : रू० ४५.००

ISBN : 978-81-218-0104-4

© **चौखम्बा कृष्णदास अकादमी**
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

KISHOR GRANTHMALA
51
***

YONITANTRAM

(Based on Bengali Script)

with

Hindi Commentary

By

Lt. Pt. Harihar Prasad Tripathi

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY

VARANASI

अनेक ग्रन्थों के लेखक, सम्पादक एवं भाष्यकार

स्व० पं. हरिहरप्रसाद त्रिपाठी की प्रकाशित अन्य कृतियाँ

आध्यात्मिक कृतियाँ

दुर्गार्चन पद्धति, वेदीपूजन विधि, मुद्रारहस्य, सौन्दर्य लहरी, अद्भुत रामायण

आयुर्वेदिक कृतियाँ

हारीत संहिता, वङ्गसेन संहिता, वृन्दवैद्यक, त्रिफलार्थ शतौषध दर्पण, धनवन्त निघण्टु।

तन्त्र-विषयक कृतियाँ

डामर तन्त्र, शाबर तन्त्र प्रयोग, भूतडामर तन्त्र, कामरत्न तन्त्र, मन्त्र रहस्यम्, महायक्षिणी साधना, बृहद् इन्द्रजाल, बगलामुखी साधना पद्धति, योगिनी तन्त्र, योनितन्त्र, काकचंडीश्वर तंत्र।

योग-सम्बन्धी कृतियाँ

शिवसंहिता, हठयोग प्रदीपिका।

अन्य कृतियाँ

पाकदर्पण।

***

प्राक्कथन

तन्त्र-साधना के लिए मुख्यतः दो मार्ग बतलाये गये हैं – (१) गमार्ग एवं (२) वाममार्ग । दक्षिणाचार में सात्त्विक पूजन का न है जिसके द्वारा दिव्य साधना होती है। इसके लिए साधक ुद्धाशुद्ध का भेदभाव रखना आवश्यक होता है। परन्तु वामाचार मस्त प्रकार के भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ सदैव ग्राह्य माने जाते हैं। चार में तमोगुण की प्रधानता होती है जिसमें उपासना के निमित्त मदिरा, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन– इन पंच मकारों की आवश्यकता वार्य रूप से होती है।

जहाँ एक ओर कुछ लोगों का मानना है कि वामाचार की या अत्यन्त निकृष्टतम है, वहीं दूसरी ओर अनेक लोगों की धारणा है कि वामाचार की विधि साधक के लिए सद्यः सिद्धिदायक ग के रूप में सामने आती है। उसे सिद्धि पाने के लिए एक समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। तन्त्र-साधना के निमित्त क को गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करना नितान्त श्यक होता है। जो लोग गुरुदीक्षा ग्रहण किये बिना इस मार्ग में र होते हैं उन्हें लाभ होने के बदले हानि अधिक उठानी पड़ती

वस्तुतः शक्ति उपासना की महत्ता को किसी भी दशा में रा नहीं जा सकता। आद्याशक्ति भगवती ही चराचर जगत की दिका, पालिका तथा संहारिका हैं। इन्हीं आद्याशक्ति के द्वारा ही विष्णु, तथा शिव की उत्पत्ति मानी गयी है। ये ही जगन्माता हैं।

ये ही महासरस्वती, महालक्ष्मी एवं महाकाली के नाम से विश्वविश्रु
हैं। इन आद्याशक्ति के ही चण्डिका, चामुण्डा तथा दुर्गा आदि विभि
नाम एवं रूप हैं। भक्तों के दुःखार्त्त होने पर ये भगवती ही अप
भक्तों को त्राण दिलाती एवं उन्हें भयमुक्त करती हैं।

कवि-सम्राट् तुलसीदास जी ने अपने महाकाव्य में इन्हीं भगव
की अकथ्य महिमा का वर्णन अत्यन्त सारगर्भित वचनों में इ
प्रकार उद्धृत किया है—

गई भवानी भवन बहोरी ।
बन्दि चरण बोली कर जोरी ।।
जय-जय-जय गिरिराज किशोरी ।
जय महेश-मुखचन्द्र-चकोरी ।।
जय गजबदन षड़ानन माता ।
जगतजननि दामिनी दुति गाता ।।
नहिं तव आदि-मध्य-अवसाना ।
अमित प्रभाव वेद नहिं जाना।।
भव-भवविभव पराभव-कारिणि ।
विश्व-विमोहनि स्ववश विहारिणि ।।
सेवत तोहिं सुलभ फल चारी ।
वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी ।।
मोर मनोरथ जानहु नीके ।
बसहु सदा उर-पुर सब ही के ।।
प्रकट न कीन्हेहुँ कारण तेही ।

अस कहि चरण गही वैदेही ।।

(रामचरितमानस बालकाण्ड)

उपर्युक्त प्रसंग द्वारा यह बात सिद्ध होती है कि शक्तिपूजा के फलस्वरूप ही मानव को चतुर्विध (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) फल की उपलब्धि होती है। यही कारण है कि धर्मप्राण जनता प्रतिवर्ष वरात्र के महीने में सम्पूर्ण देश में शक्ति आराधना का आयोजन करती है। इस शक्ति उपासना का उद्देश्य शक्ति-संचय करना ही होता है।

प्रस्तुत पुस्तक में शक्ति की आराधना विधि के समस्त विधानों का समावेश किया गया है। इसके अतिरिक्त स्तोत्र, कवचादि भी दे दिये गये हैं। पुस्तक के अन्त में विशिष्ट एवं कुछ गूढ़ शब्दों के भाव का भी स्पष्टीकरण किया गया है जिससे पाठकों को किसी प्रकार की असुविधा या भ्रम न हो।

प्रस्तुत पुस्तक सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में उपलब्ध ंगला भाषा में लिखित पांडुलिपि पर आधारित है। पांडुलिपि अधिकारी के सहयोग के कारण यह पुस्तक तैयार करने में मुझे आसानी हुई, सके लिए मैं पांडुलिपि अधिकारी का हृदय से आभारी हूँ।

अन्त में मैं श्रीकृष्णदास अकादमी, चौखम्बा, वाराणसी के मुख संचालक श्री टोडरदास जी गुप्त एवं सह-संचालक श्री कमलेश जी गुप्त को धन्यवाद देना न भूलूँगा जिनकी तत्परता एवं लगन के कारण ही तन्त्रशास्त्र की दुर्लभ पुस्तकों का प्रकाशन प्रतिष्ठान के द्वारा अविराम गति से होता जा रहा है।

हरिहरप्रसाद त्रिपाठी
सी. के. ५८/३५, रेशमकटरा,
वाराणसी- २२१००१

विषयानुक्रमणी

विषय	पृष्ठांक
प्रथम अध्याय	१-५
द्वितीय अध्याय	६-१०
तृतीय अध्याय	११-१५
चतुर्थ अध्याय	१६-२१
पंचम अध्याय	२२-२
षष्ठ अध्याय	२८-३
सप्तम अध्याय	३५-४
अष्टम अध्याय	४१-४
योनिध्यानम्	४४
योनिस्तोत्रम् (१)	४५-५
योनिस्तोत्रम् (२)	५१-५
योनिकवचम्	५५-५
कालीकवचम्	५८-६
अथ मुद्रालक्षणम्	६५-७
प्रस्तुत ग्रन्थ में उल्लिखित कुछ प्रमुख शब्दों के भावार्थ	७१

योनितन्त्र

प्रथम अध्याय

ॐ परमदेवतायै नमः । ॐ श्रीगुरवे नमः ।।

कैलाशशिखरारूढं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
सदास्मेरमुखी दुर्गा पप्रच्छ नगनन्दिनी ।।१।।

श्रीदेव्युवाच

चतु:षष्टि च तन्त्राणि कृतानि भवता प्रभो ।
तेषां मध्ये प्रधानानि वद मे करुणानिधे ।।२।।

ॐ परमदेवता को मेरा नमस्कार है। ॐ श्रीगुरु के चरणों में मेरा नमस्कार है। सर्वदा ही उत्फुल्लवदना एवं मन्द हास्यमुखी भगवती दुर्गा ने कैलासगिरिशृंग पर विराजमान जगद्गुरु परमेश्वर से जिज्ञासु भाव से पूछा – हे करुणानिधे ! आप चतु:षष्टि तन्त्र के प्रणेता हैं। अत: आप उन समस्त तन्त्रसमूहों में से जो प्रधान तन्त्र हो उसे आप मुझसे वर्णन करने की कृपा करें ।।१-२।।

श्रीमहादेव उवाच

शृणु पार्वति चार्वङ्गि अस्ति गुह्यतमं प्रिये ।
कोटिवारं वारितासि तथापि श्रोतुमिच्छसि ।।३।।
स्त्री स्वभावाच्च चार्वङ्गि तथा मां परिपृच्छसि ।
गोपनीयं प्रयत्नेन त्वयेव विद्यते च तत् ।।४।।

शिवजी ने कहा– हे कोमलांगी पार्वति ! मैंने इस गुप्तम विद्या का कथन करोड़ों बार किया है, परन्तु यदि तुम नारीसुलभ चपलता के कारण पुन: सुनना चाहती हो तो सुनो ।।३-४।।

मन्त्रपीठं यन्त्रपीठं योनिपीठञ्च पार्वती ।
योनिपीठं प्रधानं हि तव स्नेहात् प्रकाश्यते ।।५।।
हरिहाराद्याश्च ये देवा: सृष्टि-स्थित्यन्तकारका: ।
सर्वे वै योनिसम्भूता: शृणुष्व नगनन्दिनि ।।६।।

हे देवी पार्वति! मैं इस विद्या के तीनों पीठों—मन्त्रपीठ, यन्त्रपीठ त
योनिपीठ अर्थात् शक्तिपीठ के सम्बन्ध में वर्णन करूँगा। इन तीनों पीठों
योनिपीठ सर्वदा ही मुख्य है । मैं इसका कथन केवल तुम्हारे स्नेह के कारण
कर रहा हूँ।

हे गिरिनन्दिनि ! तुम इसे एकाग्रचित्त होकर सुनो। सृष्टिकर्ता ब्रह्
पालनकर्ता विष्णु तथा संहारकर्ता शिव की उत्पत्ति इसी योनि अर्थात् आद्याश
के द्वारा ही हुई है। इन त्रिदेवों के अतिरिक्त समस्त देवगण भी इन्ही से प्रादु
हैं ।।५-६।।

शक्तिमन्त्रमुपास्यैव यदि योनिं न पूजयेत् ।
तेषां दीक्षाश्च मन्त्राश्च ठ नरकायोपपद्यते ।।७।
अहं मृत्युञ्जयो देवि तव योनि प्रसादतः ।
तव योनिं महेशानि भावयामि अहर्निशम् ।।८।

शक्ति आराधना में दीक्षित उपासक यदि योनिपीठ का पूजन-अ
करने से वंचित रह जाय तो उसके द्वारा कृत समस्त पूजा एवं मन्त्रादि निष्
हो जाते हैं और वे ही उसके लिए नरक - भोग का कारण बनते हैं। हे महेशा
तुम्हारी योनि (शक्ति) के फलस्वरूप ही मैं मृत्युजयी बना हूँ और रात-
चिन्तनमग्न रहा करता हूँ।।७-८।।

पूजयामि सदा दुर्गे हृत्पद्मे सुरसुन्दरि ।
दिव्यभावो वीरभावो यस्य चित्रे विराजते ।।९।
अनायासेन देवेशि तस्य मुक्तिः करे स्थिता ।
शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य यो वा योनिप्रपूजकः ।।१०

मैं अपने हृत्प्रदेश में निरन्तर तुम्हारी पूजा किया करता हूँ। उस हृद
तुम दिव्यभाव तथा वीरभाव से सतत अवस्थित रहती हो । हे दुर्गे! मोक्ष
सहज ही तुम्हारे हस्तगत है। जो भी प्राणी योनिपीठ (शक्तिपीठ) की आरा
करता है वह अनायास ही मुक्तिलाभ का अधिकारी बन जाता है ।।९-१०

स धन्यः स कवि र्धीमान् स वन्द्योऽपि सुरासुरैः ।
ब्रह्मा यदि चतुर्वक्त्रैः कल्पकोटि-शतैरपि ।।११

तदा वक्तुं न शक्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः ।
यदि भाग्यवशेनापि सपुष्पां मीनचेतसाम् ।।१२।।

हे देवि! शक्तिमन्त्र का पूजक मानव ही धन्य है। वही व्यक्ति देव-दानवों वंदित, बुद्धिशाली एवं कवि-प्रतिभा से सम्पन्न माना जाता है। यदि चतुर्मुख ा भी सौ करोड़ वर्षों तक शक्तिपीठ की महिमा का गुणानुवाद करते रहें तो भी इस कार्य में समर्थ नहीं हो सकते । तो फिर मैं इस सम्बन्ध में अधिक ा कह सकता हूँ ? यदि किसी को भाग्यवशात् पुष्पिता कुलललना प्राप्त हो य ।।११-१२।।

तदेव महतीं पूजां कृत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ।
आनीय प्रमदां कान्तां घृणा-लज्जा-विवर्ज्जिताम् ।।१३।।
स्वकान्तां परकान्तां वा सुवेशां स्थाप्य मण्डले ।
प्रथमे विजयां दत्त्वा पूजयेद् भक्तिभावतः ।।१४।।

तो उसकी योनिपीठ की विधिवत् पूजा द्वारा पूजक को मोक्षलाभ मिलता वह नायिका स्वकीया हो या परकीया, उसे मण्डल के मध्यवर्ती भाग में ज्जित परिधान से युक्त कर स्थापित करना चाहिए। तदनन्तर उसे सर्वप्रथम ा प्रदान कर भक्तिचित्त से उसकी पूजा करनी चाहिए।।१३-१४।।

वामोरौ परिसंस्थाप्य पूजा देया कुलोचिता ।
योनिगर्त्ते चन्दनञ्च दद्यात् पुष्पं मनोहरम् ।।१५।।
तत्र चावाहनं नास्ति जीवन्यासं तथा मनुः ।
तन्मुखे कारणं दत्त्वा सिन्दूरेनार्धचन्द्रकम् ।।१६।।

पूजनोपरान्त साधक को अपनी बायीं जाँघ पर उस तरुणी को बैठाकर नरीत्यानुसार पूजा करनी चाहिए। पूजन-काल में शक्तिपीठ पर चन्दन एवं ान्धित पुष्पों को अर्पित करें। इस प्रकार के पूजन में देवी का आवाहन, वन्यास या मन्त्रन्यास की कोई अनिवार्यता नहीं है। तत्पश्चात् इस युवती नलललना के मुख में साधक को सुरापान करा कर उसके मस्तक पर सिन्दूर ा अर्धचन्द्रांकन कर देना चाहिए।।१५-१६।।

ललाटे चन्दनं दत्त्वा हस्तद्वयं कुचोपरि ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा स्तनमध्ये वरानने।।१७।।
कुचयोर्मर्द्दनं कुर्यात् गण्डचुम्बनपूर्वकम् ।
अष्टोत्तरशतं वापि सहस्र योनिमण्डले ।।१८।।

तत्पश्चात् साधक को चाहिए कि वह उस कुलांगना के भाल पर च लगाकर अपने दोनों हाथों को उसके स्तनमण्डल पर जमा दे। अब उसे मूल का एक सौ आठ बार जाप कुचों के मध्य भाग पर करना चाहिए। इस प्र जाप पूर्ण कर लेने के अनन्तर उसे गंडस्थल का चुम्बन तथा स्तनों का म करते हुए उसके योनिप्रदेश पर १०८ बार अथवा १००८ बार मूलमन्त्र जाप करना आवश्यक बतलाया गया है।।१७-१८।।

जप्त्वा महामनुं स्तोत्रं पठेद् भक्तिपरायणः ।
पूजाकाले गुरुर्न स्यात् यदि साधक सत्तमः ।।१९।।
स्वयं पूजाप्रकर्त्तव्या नात्र कार्या विचारणा ।
गुगेरग्रे पृथक् पूजा विफला च न संशयः ।।२०।।

जाप पूर्ण हो जाने के पश्चात् श्रद्धान्वित होकर साधक को स्तोत्र प्रारम्भ कर देना चाहिए। यदि पूजन-काल में वहाँ गुरु अनुपस्थित रहे साधक को स्वयं कुलपूजा प्रतिपादित करने चाहिए। गुरु की उपस्थिति में गुरु के द्वारा ही कराये। गुरु की विद्यमानता में साधक यदि स्वयं पूजन क कराता है तो उसकी पूजा निष्फल हो जाती है। इसमें किसी प्रकार का स करना उचित नहीं है ।।१९-२०।।

तस्मात् बहुतरै र्यत्नै र्गुरवे च समर्पयेत् ।
पूजावसाने आगत्य प्रणमेत् योनिमण्डले ।।२१।।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा स्वगुरुं प्रणमेत् पुनः ।।
प्रार्थयेद् बहुमंत्रेन कृताञ्जलि पुटः सुधीः ।।२२।।

पूजन स्थल पर गुरु की विद्यमानता रहने पर सम्पूर्ण पूजनकर्म गुरु द्वारा ही निष्पन्न होने चाहिए। इस प्रकार पूजावसान के अनन्तर साधक को के योनिपीठ को नमस्कार ही करना उचित कहा गया है। योनिपीठ को तीन

पांजलि अर्पित कर साधक अपने गुरु को प्रणाम निवेदित करे। तदनन्तर उसे ञ्जलिबद्ध होकर गुरु के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करनी चाहिए।२१-२२॥

योनिपूजाविधिं दृष्ट्वा कृतार्थोऽस्मि न संशयः ।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् ।।२३।।
पूजां कृत्वा महायोनिमुद्धृतं[४] नरकार्णवात् ।।२४।।

साधक को विनयावनत होकर गुरु से कहना चाहिए– हे गुरुदेव ! पने योनिपूजा-विधि प्रदर्शन के द्वारा मुझे कृतार्थ बना दिया है। आपकी कृपा आज मेरा जीवन धन्य एवं सफल हो उठा । आपने योनिपूजन करके मुझे कवास से उबार लिया है॥२३-२४॥

इति योनितन्त्रे प्रथमोऽध्यायः सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार योनितन्त्र के प्रथम अध्याय की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत न्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

द्वितीय अध्याय

श्रीदेव्युवाच

देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ।
त्वां विना जनकः कोऽपि मां विना जननी परा ।।१
संक्षेपात् कथिता योनि-पूजाविधि-रनुत्तमा ।
कस्या योनिः पूजितव्या योनिश्च कीदृशी शुभा ।।२

देवी पार्वती बोलीं – हे देवदेव जगन्नाथ ! आप ही सृष्टि के उत्पा पालक एवं संहारक हैं। आपके सिवाय इस सृष्टि का कोई अन्य न तो ज (पिता) है और मेरे अतिरिक्त इस जगत् में न ही कोई जननी (माता) है। योनिपूजन के उत्तमोत्तम विधि के ज्ञाता हैं। आप मुझे यह बतायें कि किस की नारी की योनि मांगलिका तथा पूजनीया होती है।।१-२।।

श्रीमहादेव उवाच

नटी कापालिनी वेश्या रजकी नापिताङ्गना ।
ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका ।।३
मालाकारस्य कन्या च नव कन्याः प्रकीर्तिताः ।
अथवा सर्वजातीया विदग्धा लोललोचना ।।४

देवी के प्रश्न को सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया– हे देवि! न कापालिका, वेश्या, रजकी (धोबिन), नापितांगना (नाई की स्त्री), ब्राह शूद्रकन्या, ग्वालिन तथा माली की पुत्री । उपर्युक्त वर्णित इन्हीं नव व नारियों की योनि पूजन के निमित्त उपयुक्त मानी गयी है। इनके अतिरिक्त वि तथा लोललोचना (वह नायिका जो निरुद्देश्य ही इधर-उधर परिभ्रमण क रहती हो तथा जिसके चंचल नेत्र चारों ओर बार-बार घूमते रहते हों) नारिय इस कार्य के लिए विहित कही जाती हैं।।३-४।।

मातृयोनिं परित्यज्य सर्व्वयोनिञ्च ताड़येत् ।
द्वादशाब्दाधिका-योनिं यावत् षष्टीं समापयेत् ।।५

प्रत्यहं पूजयेद योनिं पञ्चतत्त्वै र्विशेषतः ।
योनिदर्शनमात्रेण तीर्थकोटिफलं लभेत् ।।६।।

केवल अपनी माता की योनि को छोड़कर सम्पूर्ण कुलरमणियों की योनि ाड़नीय होती है। साधक बारह वर्ष से अधिक वयवाली किशोरियों की ोनिपीठ को साठ वर्ष तक पंचतत्त्व द्वारा यथाविधि पूजन में व्यव्रहृत कर सकता ा योनिपीठ के दर्शन मात्र से ही साधक को करोड़ों तीर्थस्थान के दर्शन का ल प्राप्त होता है।।५-६।।

तिलकं योनितत्त्वेन वस्त्रञ्च कुलरूपकम् ।
आसनं कुलरूपञ्च पूजनञ्च कुलोचितम् ।।७।।
प्रथमं मर्दनं तस्याः कुन्तला कर्षणादिकम् ।
तद्धस्ते च स्वालिङ्गञ्च दद्यात् साधक -सत्तमः ।।८।।

देवी को तिलक का अर्पण योनितत्त्व के द्वारा करने का विधान कहा ाया है। कुलाचार रीत्यानुसार वस्त्र तथा आसन का अर्पण कर विधि-विधान-ूर्वक अपने इष्टदेवी का पूजन करना चाहिए। सर्वप्रथम कुलरमणी का स्तन र्दित कर उसके केशों का आकर्षण करे। तदनन्तर साधक को उस रमणी के ाथ में अपना लिंग अर्पित कर देना चाहिए।।७-८।।

योनिपूजां विधायाथ लिङ्ग -पूजनमुत्तमम् ।
चन्दनं कुङ्कुमं दद्यात् लिङ्गोपरि वरानने ।।९।।
योनौलिङ्ग समाक्षिप्य ताडयेद्बहुयत्नतः ।
ताड्यमाने पुनस्तस्या जायते तत्त्वमुत्तमम् ।।१०।।

हे वरानने ! योनिपीठ की पूजा करने के पश्चात् लिंगपीठ का पूजन करे। ूजन-काल में लिंग के ऊपर चंदन एवं कुंकुमादि द्रव्य प्रदान करने चाहिए। ूजित योनि में लिंग को प्रविष्ट करा कर यत्नसहित उसका मंथन करना चाहिए। स दशा में कुलतरुणी को चाहिए कि वह श्रेष्ठ तत्त्वग्रहणपूर्वक आद्याशक्ति गवती का पूजन करे।।९-१०।।

तत्त्वेन पूज्येद्देवीं योनिरूपां जगन्मयीम् ।
भौमावास्यां निशाभागे चतुष्पथ गतो नरः ।।११।।

श्मशाने प्रान्तरे गत्वा दग्धमीन- समन्वितः ।
पायसानं बलिं दत्त्वा कुबेर इव पारगः ।।१२

भौमवती अमावस्या (मंगलवार के दिन पड़ने वाली अमावस्या ति में साधक को किसी चौराहे, श्मशानभूमि या वन-प्रान्त में जाकर रात्रिका पूजा करनी चाहिए। पूजावसान के अन्त में साधक को भुनी हुई मछली खीर की बलि देनी चाहिए। इस प्रकार की पूजा सम्पन्न करने वाला सा धनाधिप कुबेर के समान बन जाता है।।११-१२।।

चितायां भौमवारे च यो जपेद् योनिमण्डले ।
पठित्वा कवचं देवि पठेन्नामसहस्रकम् ।।१३
स भवेत् कालिकापुत्रो मुक्तः कोटिकुलैः सह ।
सामिषान्नं बलिं दत्त्वा शून्यगेहे अथवा गृहे ।।१४
जपित्वा च पठित्वा च भवेद् योगीश्वरो नरः ।
रजस्वलाभगं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा साधकः स्वयम् ।।१५
अष्टतोत्तरशतं जप्त्वा भवेत् भुवि पुरन्दरः ।
स्वशुक्रै योनिपुष्पैश्च बलिं दत्त्वा जपेन्मनुम् ।।१६।।

जो साधक मंगलवार के दिन चिताभूमि में बैठकर पूजा की समाप्ति बाद पहले शक्तिपीठ का जाप, कवचपाठ तथा कालिका सहस्रनाम स्तोत्र पाठ करता है वह स्वयं कालि-पुत्र के समान बन जाता है और अपने क कुल का उद्धार कर देता है।

जो साधक किसी शून्यगृह (निर्जन) अथवा स्वगृह में आभिषयुक्त ब अर्पित कर मन्त्रजाप, कवच या सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करता है वह सदृश हो जाता है। जो साधक रजस्वला तरुणी की योनिपीठ (शक्तिपीठ) दर्शन एवं स्पर्शन के पश्चात् १०८ बार इष्टमन्त्र का जाप कर लेता है वह भू पर ही इन्द्रतुल्य हो जाता है। उपासक को अपने शुक्र (वीर्य) तथा अपने- उत्पन्न हुए पुष्प को मिश्रित कर बलि प्रदान करना चाहिए।।१३-१६।।

दग्धमीनं कुक्कुटाण्डं मूषकं महिषं नरम् ।
मधु मांसं पिष्टकान्नं बलिं दत्त्वा निशामुखे ।।१७।।

यत्र तत्र महास्थाने स्वयं नृत्यपरायण: ।
दिगम्बरो मुक्तकेश: स भवेत् सम्पदांपदम् ।।१८।।

साधक को रात्रि के समय श्मशानभूमि में भुनी हुई मछली, मुर्गी का
डा, बकरा, महिष, मधु, मानव-मांस तथा पिष्टकान्न (पीठी) द्रव्यों का बलि
र्पण करना चाहिए। बलि प्रदान के अनन्तर यदि वह नग्नावस्था में बालों को
खेरे हुए नर्तन में लीन हो जाय तो वह सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का स्वामी बन जाता
।१७-१८।।

परयोनौ जपेन्मन्त्रं सर्वकाले च सर्वदा।
देवी बुद्धया यजेद् योनिं तां शक्तिं शक्तिरूपिणीम् ।।१९।।
धर्म्मार्थकाममोक्षार्थी चतुर्व्वर्गं लभेन्नर: ।
मद्यं मांसं बलिं दद्यात् निशायां साधकोत्तम: ।।२०।।

सर्वत्र सदा ही परकीया तरुणी की योनि (शक्तिपीठ) पर ही जाप करना
चित होता है। कुलरमणी की योनिपीठ को आद्याशक्तिस्वरूपा मानकर ही
सकी पूजा करे। इस रूप में साधना करने पर साधनकर्ता को चतुर्विध फल
धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) की उपलब्धि होती है। उस श्रेष्ठ साधक को रात्रि
ाल में मद्य- मांसादियुक्त बलि अर्पण करना चाहिए।।१९-२०।।

यत्नतस्ताडयेद् योनिं कुचमर्द्दन-पूर्व्वकम् ।
शक्तिरूपा च सा देवी विपरीतरता यदि ।।२१।।
तदा कोटि कुलै: साद्‌र्धं जीवितञ्च सुजीवितम् ।
योनिक्षालन-तोयेन लिङ्ग-प्रक्षालनेन च ।।२२।।
पूजयित्वा महादेव अर्घं दद्यात् विधानत: ।
तत्तोयं त्रिविधं कृत्वा भागं शक्त्यै निवेदयेत् ।।२३।।

साधक को बलि अर्पण के पश्चात् स्तनमर्दन करते हुए योनि का
सम्पीड़न करना चाहिए। यदि वह शक्तिस्वरूपिणी देवी विपरीत रतिक्रिया में
लग्न हो जाय तो ऐसा साधक अपने करोड़ों कुटुम्ब के साथ धन्य हो जाता
। रति-क्रीड़ा के अन्त में योनि तथा लिंग प्रक्षालन से प्राप्त होने वाले जल के
ारा ही महाशक्ति का पूजन करे। उसी जल से अर्घ्य भी प्रदान करना चाहिए।

अब इस प्रक्षालित जल का तीन भाग कर ले। उसमें से एक भाग शक्ति कुलतरुणी को निवेदित कर दे ॥२१-२३॥

भागद्वयं तथा मन्त्री कारणेन व्यवस्थितम् ।
मिश्रयित्वा महादेवि पिबेत् साधकसत्तमः ॥२४॥
वस्त्रालङ्कार-गन्धाद्यै-स्तोषयेत् परसुन्दरीम् ।
तद् योनौ पूजयेद् विद्यां निशाशेषे विधानतः ॥२५॥
भगलिङ्गै र्भगक्षालै र्भगशब्दाभिधानकैः ।
भगलिङ्गामृतैः कुर्य्यान्निवेद्यं साधकोत्तमः ॥२६॥

इति योनितन्त्रे द्वितीयोऽध्यायः सम्पूर्णम् ।

तत्पश्चात् अवशिष्ट दो भाग जल में मद्य का मिश्रण कर साधक को स्वयं ही पान कर लेना चाहिए। इतना कर लेने के उपरान्त उस शक्तिस्वरूपा नारी को वस्त्राभूषण तथा गन्धादि द्रव्यदान के द्वारा सन्तुष्ट करना आवश्यक होता है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में उस परमाप्रकृति आद्याशक्ति का विधिवत् पूजन-अर्चन करना चाहिए। पूजन-काल में योनि तथा लिंग द्वारा प्रक्षालित जल से साधक के लिए नैवेद्य अर्पण करना भी पूजा की एक आवश्यक विधा मानी गयी है।।२४-२६॥

इस प्रकार योनितन्त्र के द्वितीय अध्याय की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

तृतीय अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि सावधानावधारय ।
गोपनीयं प्रयत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन ।।१।।
प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् प्रकाशात् मरणं ध्रुवम् ।
प्रकाशात् मन्त्रहानि स्यात् प्रकाशांत् शिवहा भवेत् ।।२।।

शिवजी ने कहा– हे महेशानि! मैं प्रयत्नपूर्वक अतिगोपनीय विषय का प्रकाशन कर रहा हूँ। तुम सावधान चित्त से इसे श्रवण करो । मैं इस विषय का कदाचित् कथन करना नहीं चाहता हूँ क्योंकि इसके प्रकटीकरण से सिद्धिहानि तथा मन्त्रहानि होती है। प्रकटन करने से सभी कल्याणकारी फलों का नाश तथा मरण होना भी सुनिश्चित होता है।।१-२।।

योनितत्त्वं समुद्भूतं तन्त्रं तन्त्रप्रधानकम् ।
सुगोप्योऽयं हि तन्त्रश्चेत् तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।।३।।
पापात्मा मैथुने यस्य घृणा स्याद् रक्तरेतसोः ।
पाने भ्रान्तिर्भवेद् यस्य भेदबुद्धिश्च साधके ।।४।।

योनितत्त्व से प्रादुर्भूत तन्त्र ही समस्त तन्त्रों में मुख्य है । इस तन्त्र की सभी प्रकार से गोपनीयता होने पर भी मैं इसे केवल तुम्हारे स्नेह के कारण ही प्रकटित कर रहा हूँ। मैथुन के प्रति जिसमें घृणा, रक्त तथा वीर्यपान में जिसकी भ्रांतिवश अरुचि तथा साधनों में जो साधक भेदबुद्धि रखता है अर्थात् इष्टदेवी तथा साधक में परस्पर एकात्मकता एवं अभिन्नता का ज्ञान उत्पन्न नहीं हो पाता तो वह साधक महान पापात्मा होता है।।३-४।।

शक्तिमन्त्रमुपास्यैव स दुरात्मा कथं व्रजेत् ।
पूजयित्वा महामायां छागमेषादिभिर्नरैः ।।५।।
रूरूभि र्हरिणै रूष्ट्रै र्गजै र्गोभिः शिवासुभिः ।
सिंहैरसै-र्गर्द्दभैश्च पूजयेद् भक्तिभावतः ।।६।।

ऐसा दुर्जन शक्ति उपासक यदि महामाया को पूजनोपरान्त बकरा, भैं रुरु मृग (काले वर्ण का हरिण विशेष), नेवला, ऊँट, हाथी, घोड़ा, शृगाल सिंह, कछुआ, गर्दभ तथा नरबलि भी प्रदान करे तो भी वह अपना लक्ष्य प्रा करने से वंचित रह जाता है और उसे सिद्धिलाभ नहीं होता। फलतः वह अन्त नरकगामी ही होता है॥५-६॥

योनिदर्शनमात्रेण कुलकोटिं समुद्धरेत्।
चन्द्रसूर्योपरागे च यदि योनिं प्रपूजयेत् ॥७
तर्पणं योनितत्त्वेन न पुनर्ज्जायते भुवि।
क्रमशो लोकमासाद्य देवीलोके महीयते ॥८

केवल योनिपीठ के दर्शन मात्र से ही साधक की करोड़ों पीढ़ी तर जा है। सूर्य-चन्द्रग्रहण काल में जो साधक योनिपीठ का पूजन कर योनितत्त्व द्वारा तर्पण करता है उस साधक का पुनर्जन्म नहीं होता, वह सांसारि आवागमन से छूट जाता है॥७-८॥

तत्र तिष्ठेत् साधकेन्द्रः शक्त्यायुक्तो महेश्वरः।
महाशङ्खेन कल्याणि सर्व्वं कार्य्यं जपादिकम् ॥९॥
पञ्चतत्त्वं विना देवि यत् किञ्चित् क्रियते नरैः ।
तत् सर्वं निष्फलं तस्य अन्ते च नरकं ब्रजेत् ॥१०॥

ऐसा साधक मरणोपरान्त उच्च से उच्चतर स्थान प्राप्त कर महाशक्ति साथ मिलित रूप से उस स्थान में वास करता है जहाँ सदैव महेश्वर वासस्थान होता है। साधनकर्ता को सदैव ही महाशंखनिर्मित माला के द्वारा जपक्रिया पूर्ण करनी चाहिए। महाशक्ति की साधना के हेतु जो साधक पंचतत्त्वविहीन कार्य सम्पन्न करता है उसकी साधना फलवती नहीं होती और वह देहत्याग पश्चात् नरकवासी होता है॥९-१०॥

अन्य -योनि-विभेदस्त यत् किञ्चित् साधकोत्तमैः।
कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावदाभूतसंप्लवम् ॥११॥
योनिमुखे मुखं दत्त्वा प्रजपेदयुतं यदि ।
कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥१२॥

जो मानव इष्टसाधना के निमित्त स्वकीया-परकीया नारी की योनि में
न्नता का भाव रखता है वह प्रलयान्त तक कुम्भीपाक (एक कल्पित नरक)
मक नरक के तप्त तैल के कड़ाह में खौलाया जाता है। यदि साधक योनिमुख
अपना मुख लगाकर दश सहस्त्र की संख्या में मन्त्रजाप कर ले तो उसके
रोड़ों जन्म के अर्जित पाप भी सद्यः नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥११-१२॥

रेतोयुक्तानि पुष्पाणि स्वपुष्प-मिश्रितानि वा ।
कारणेनाभिमन्त्र्याथ दद्यात् योनौ प्रयत्नतः ।।१३।।
स भवेत् कालिकापुत्र इति ख्यातिमुपागतः ।
योनिमूले वसेद् गौरी योन्याञ्च नगनन्दिनी ।।१४।।

वीर्यमिश्रित पुष्प अथवा ऐसा पुष्प जो अपने आप ही उत्पन्न हुआ हो,
। मद्य के साथ अभिमन्त्रित कर जो प्राणी योनिपीठ पर अर्पण करता है वह
ालिका-पुत्र के समान प्रसिद्धि अर्जित करता है । क्योंकि योनिमूल में गौरी
था योनिप्रदेश में पार्वती का निवास माना गया है ॥१३-१४॥

काली तारा योनिचिह्ने कुन्तले छिन्नमस्तका ।
बगलामुखी च मातङ्गी वसेत् योनि-समीपतः ।।१५।।
योनिगर्त्ते महालक्ष्मीः षोडशी भुवनेश्वरी ।
योनि -पूजनमात्रेण शक्तिपूजां भवेद् ध्रुवम् ।।१६।।

इसके अतिरिक्त योनिचक्र में काली एवं तारा देवी, योनिकुंडल में
छन्नमस्ता, योनि के समीपवर्ती स्थान में बगलामुखी (पीताम्बरा) तथा मातंगी,
ोनिगह्वर में महालक्ष्मी, षोडशी एवं भुवनेश्वरी का वास होता है। केवल
ोनिपीठ की पूजा के अनुष्ठान मात्र से ही आद्याशक्ति की पूजा हो जाती है ।
ह बात नितान्त ही सत्य है॥१५-१६॥

पक्ष्यादि-बलिजातीनां रुधिरैश्च प्रपूजयेत् ।
योनि योनीति यो व्यक्ति जपकाले च साधकः ।।१७।।
तस्य योनिः प्रसन्ना स्याद् भुक्ति -मुक्ति प्रदायिनी ।
योगी चेन्नैव भोगी स्याद् भोगी च न तु योगवान् ।।१८।।

पूर्वोल्लिखित पशु-पक्षियों (बकरा, भैंसा, मृग, नेवला आदि) की ब
अथवा पशुरक्त के द्वारा योनिपूजन करना विहित माना गया है। जपकाल में
साधक 'योनि-योनि' का शब्दोच्चार करता है उससे आद्याशक्ति भगवती सन
होती हैं और उसे अभीप्सित ऐश्वर्य तथा मुक्ति देती हैं। जिस प्रकार योगी व्य
कभी भोगी नहीं बनता है उसी प्रकार भोगी व्यक्ति भी कभी योगी नहीं हो सक
है॥१७-१८॥

योगभोगात्मकं[८] कालं यदि योनिप्रपूजकः ।
योनिपूजां विना दुर्गे सर्व्वपूजा वृथा भवेत् ॥१९॥
योनिमध्ये प्रधाना च चाण्डाली गणनायिका ।
तस्याः पूजनमात्रेण मम तुल्यो न संशयः ॥२०॥

परन्तु योनिपीठ का उपासक मानव योग तथा भोग दोनों का
अधिकारी बन जाता है। हे दुर्गे ! योनिपूजन के विना अन्य पूजन से कोई
लाभ नहीं होता है। योनि के मध्यवर्ती स्थान में चांडाली ही सर्वप्रधान गणनायि
है। अर्थात् योनिपीठ पूजन मात्र से ही वह साधक निःसंदेह रूप से मेरे (शि
समान हो जाता है॥१९-२०॥

किं ज्ञानैः किं तपोदानैः किं जपैः किं कुलामृतैः ।
योनिपूजां विना दुर्गे सर्व्वञ्च निष्फलं भवेत् ॥२१॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं मम सर्व्वस्व-साधनम् ।
स्वयं यद्य -समर्थःस्यात् योनिपूजन-तत्परः ॥२२॥
साधकं वृणुयात् दुर्गे वस्त्रालङ्कारणादिभिः ।
पूजयित्वा महायोनिं तत्पश्चाद् अन्यमण्डलम् ॥२३॥

हे दुर्गे! ज्ञान, तप, दान, जप तथा कुलामृत की प्रक्रियाओं से क्या ल
मिल सकता है? अर्थात् कुछ भी नहीं । योनिपूजा के अभाव में सभी पू
प्रभावहीन हो जाती है। सभी साधना पद्धतियों में मेरे द्वारा कथित इस गुह्य
साधना-विधि को हर किसी से नहीं बतलाना चाहिए। यदि साधक योनिपूजा
स्वयं असमर्थ हो तो उसे किसी अन्य सुयोग्य साधक का चयन करना चाहि
और उसे ही पूजन के निमित्त वस्त्राभरण देकर पूजा को सम्पन्न कराना उ

ना जाता है। महायोनि के पूजनोपरान्त साधक मंडल के मध्य भाग में आगमन
ह ॥२१-२३॥

दण्डवत् प्रणिपत्याथ योनिमुद्रां निरीक्षयेत् ।
यस्य योनौ सदा भक्तिः साधने च तथा प्रिये ॥२४॥
तस्य दुर्गा प्रसन्ना स्यात् किमन्यै र्बहुभाषितैः ।
क्षतयोनिः पूजितव्या अक्षतां नैव पूजयेत् ।
अक्षतां पूजनाद्देवि सिद्धिहानिः पदे-पदे ॥२५॥

इति योनितन्त्रे तृतीयोऽध्यायः सम्पूर्णम् ।

इसके अनन्तर योनिपीठ को दंण्डवत्-प्रणाम कर योनिमुद्रा का अवलोकन
रे। हे प्रिये ! जो व्यक्ति आद्याशक्ति भगवती के योनिपीठ के प्रति साधन-रत
श्रद्धान्वित रहा करता है उसे देवी दुर्गा की प्रसन्नता प्राप्त होती है। इस सन्दर्भ
अधिक कहना अत्युक्ति होगी। साधक को समागमसमर्था कुलनारी को ही
जन के लिए वरण करना चाहिए। अक्षतयोनि (अज्ञान शक्ति) रमणी को पूजार्थ
हण करना कदापि उचित नहीं हैं। अक्षतयोनि यौवना की योनिपीठ पूजन करने
फलस्वरूप साधक को अपनी हस्तगत सिद्धियाँ भी गवाँ देनी पड़ती है ।

इस प्रकार योनितन्त्र के तृतीय अध्याय की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत
न्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

चतुर्थ अध्याय

शिव उवाच

महाचीन क्रमोक्तेन सर्वं कार्यं जपादिकम् ।
इति ते कथितं देवि योनिपूजा-विधिर्म्मया ।।१।।
सुगोप्यं यदि देवेशि तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
कोचाख्याने च देशे च योनिगर्त्तसमीपतः ।।२।।
गङ्गायाः पश्चिमे भागे माधवी नाम विश्रुता ।
तत्र चाहर्निशं देवि योनिपूजन- तत्परः ।३।।
भिक्षाचार-प्रसङ्गेन गच्छामि च दिवानिशम् ।।४।।

शिवजी जी पार्वती से बोले – हे देवि ! महाचीन तन्त्रोक्त रीत्यानु पूर्वकथित सम्पूर्ण जप एवं पूजनकर्म पूर्ण करने चाहिए। योनिपूजा प चीनाचार मतानुसार ही प्रशस्त एवं विहित कहा गया है! यह विधि अत .गोपनीय होते हुए भी मैंने इसे केवल तुम्हारे स्नेह के वशीभूत होकर व किया है। कोच नामक प्रदेश में गंगा नदी के पश्चिमी भाग में योनिगर्त के नि माधवी नामक विश्रुत योनिपीठ अवस्थित है। योनिदर्शन तथा योनिपूजन उद्देश्य से मैं उस स्थान पर बराबर जाया करता हूँ।।१-४।।

माधवी सदृशी योनि-र्नास्ति योनि र्महीतले ।
तत्कुचौ कठिनौ दुर्गे योनिस्तस्याः सुपीनता ।।५।।
तस्या पूजनमात्रेण शिवोऽहं शृणु पार्व्वति !
राधायोनिं पूजयित्वा कृष्णः कृष्णत्वभागतः ।।६।।

भिक्षाटन के निमित्त भी मैं उस स्थान पर लगातार आता-जाता रहता परन्तु माधवी योनिपीठ कदाचित् आधुनिक कामाख्यापीठ जो कामरूप जनपद अवस्थित है, के समान इस भूतल पर कोई अन्य योनिपीठ देखने में नहीं आ उस स्थान पर देवी के दोनों उरोज अत्यन्त स्थूल तथा कठोर हैं। हे पार्वति! योनिपीठ पर देवीपूजन के फलस्वरूप मैंने शिवत्व प्राप्त किया है और इसी स में राधा की योनिपूजा के द्वारा योगीश्वर कृष्ण ने कृष्णत्व प्राप्त किया था ।।५-

श्रीरामोजानकीनाथः सीतायोनि-प्रपूजकः ।
रावणं सकुलं हत्वा पुनरागत्य सुन्दरि ।।७।।
अयोध्यां नगरीं रम्यां वसतिं कृतवान् स्वयम् ।
समुद्रस्य महाविष्णु वेंलायां वटमूलतः ।।८।।

हे देवी पार्वति! श्रीराम ने भी सीता की योनिपूजा करके दैत्यराज रावण सकुटुम्ब संहार कर पुनः अपने अवधपुरी में आकर वास किया था। इसके तिरिक्त महाविष्णु अर्थात् जगन्नाथ ने भी समुद्रयोनि का सहारा लेकर वेलाभूमि वटमूल (बरगद वृक्ष की जड़) का आश्रयण कर अवस्थान किया था।।७-८।।

भागिनीयोनिमाश्रित्य बलदेवस्तु भैरवः ।
लक्ष्मया सुदर्शनिनापि तिष्ठत्येकोऽकुतोभयः ।।९।।
अहं विष्णुश्च ब्रह्मा च मुनयश्च महाशयाः ।
आब्रह्म-स्तम्बपर्यन्तं योनौ सर्वं प्रजायते ।।१०।।

श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम ने भी अपनी बहिन सुभद्रा की योनि शक्ति) पूजन के कारण ही भैरवत्व प्राप्त किया तथा देवी लक्ष्मी ने अकूत से यभीत होकर सुदर्शन चक्र के मध्य में वास किया था। मेरे सहित ब्रह्मा, विष्णु वं समस्त मुनिगणों की उत्पत्ति योनि से ही हुई है ।।९-१०।।

योनितत्त्वस्य माहात्म्यं को वद भुवनत्रये ।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।।११।।
पञ्च - तत्त्वं बिना देवि सर्वञ्च निष्फलं भवेत् ।
सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैश्रणवं परम् ।।१२।।

इस त्रैलोवय में योनितत्त्व के माहात्म्य को कौन जान सकता है ? हे वि ! पंच मकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथन– इन पांच तत्त्वों अभाव में की गयी सम्पूर्ण साधना फलविहीन होती है। सर्वशास्त्रों में वेद श्रेष्ठ , वेद से भी अधिक श्रेष्ठता वैष्णवजनों की है। इस प्रकार का व्यक्ति लक्ष्मी द्वारा भी चलायमान नहीं किया जा सकता । वह सुदर्शन चक्र के भय से भी यातुर नहीं हो सकता । वह सदैव ही अपने आप में निर्भीक भाव से स्थित हता है।।११-१२।।

वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम् ।
दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम् ।।१३।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं तत्रापि योनिलम्पटः ।
सूर्यखद्योतयोर्यद्वत् मेरुसर्षपयोरिव ।।१४।

वैष्णव की अपेक्षा शैव, शैव से दक्षिणाचारी, दक्षिणाचारी से ब वामाचारी, वामाचारी से सिद्धान्ताचारी तथा सिद्धान्ताचारी से कौलाचारी होते हैं । कौलाचारी की अपेक्षा योनिपूजक श्रेष्ठतर माना जाता है। जिस तारागणों की तुलना में सूर्य एवं सरसों की तुलना में सुमेरु पर्वत् श्रेष्ठ हो उसी भाँति कौलाचारी के मध्य योनिसाधक सर्वोत्तम होता है ।।१३-१४।।

कुलीनः सर्वविद्याना मधिकारीति गीयते ।
यदि भाग्यवशेनापि कुलीनदर्शनं लभेत् ।।१५।
भक्ष्यै र्भोज्यैश्च संतोष्य प्रार्थयेद् बहुयत्नतः ।
आगच्छ साधकश्रेष्ठ योनिपूजन-तत्परः ।।१६।।

समस्त विद्याओं का अधिकारी केवल कुलीन साधक ही माना जात यदि भाग्यवशात् किसी कौलाचारी साधक के दर्शन सुलभ हो जायँ तो भक्ष्य एवं भोज्य वस्तुएँ प्रदान कर सन्तुष्ट करने के पश्चात् उनसे विनय करें साधक श्रेष्ठ ! आप योनिपूजन के लिए उद्यत हैं। कृपया आपका आगमन गृह में हो ।।१५-१६।।

तव दर्शनात्रेण कृतार्थोऽस्मि न संशयः ।
पशुना सह संलापः पशुसंसर्ग एव च ।।१७।।
यदि दैवान्महादेवि योनिदर्शन-तत्परः ।
तिलकं योनितत्त्वेन तदा शुद्धो भविष्यति ।।१८।।

मैं आपके दर्शनमात्र से धन्य हुआ। यदि योनिदर्शन के पश्चात् साधव साथ कोई पशुवार्ता करे या वह पशुसाधक के संस्पर्श में आ जाय तो योनितत्त्व के द्वारा तिलक लगाकर अपना शुद्धिकरण कर लेना आवश्यक है।।१७-१८।।

कुमारी पूजनं दुर्गे कुलीनभोजनं तथा ।
प्रधान द्वयमेवास्मिन् ग्रन्थेहपि च सुनिश्चितम् ।।१९।।
अंत: शाक्ता वहि: शैवा: सभायां वैष्णवा मता:।
नानावेश -धरा: कौला: विचरन्ति महीतले ।।२०।।

हे दुर्गे! योनिपीठ साधनोल्लिखित ग्रन्थों में कुमारी पूजन तथा कौल ीन) भोजन ही मुख्य है । वह कुलीन साधक शाक्तभाव सम्पन्न होना ए। उसे वाह्याचरण में अपने को शैव तथा सभास्थल में वैष्णवमतानुयायी रूप में प्रदर्शित करना चाहिए। कुलीन साधक विभिन्न प्रकार के वेशों में ा पर भ्रमण किया करते हैं।।१९-२०।।

जन्मान्तरसहस्त्रेषु यस्य वंशे प्रजायते ।
कुलीनस्तं कुलं ज्ञेयं पवित्रं नगनन्दिनि ।।२१।।
पादप्रक्षालनं यत्र कुलीन: क्रियते यदि ।
तस्य देहश्च गेहश्च पवित्रञ्च न संशय: ।।२२।।

हे नगनन्दिनि! जिसके कुल में सहस्त्रों वर्ष में एक बार भी कोई ाचारी उत्पन्न हो जाय तो उसके वंश को अत्यन्त पुनीत समझना चाहिए। किसी के घर कौल साधक अपना पाद-प्रक्षालन करा ले तो वह घर तथा -प्रक्षालक सम्पूर्ण रूप से पवित्र हो जाता है। इसमें किसी प्रकार का संशय रखना चाहिए।।२१-२२।।

योनिलम्पट: कुलीनश्च यस्मिन् देशे विराजते ।
स देश: पूज्यते देवै: ब्रह्म-विष्णु-शिवादिभि: ।।२३।।
कुलीनं प्रति दानञ्च अनन्तायोपपद्यते ।
पशुहस्ते प्रदानञ्च सर्व्वत्र निष्फलं भवेत् ।।२४।।

जिस भू-भाग में कौलाचारी योनिपीठ साधक निवास करता है वह प्रदेश , विष्णु एवं शिवादि देवगणों द्वारा पूजित होता है। कौलाचारी को प्रदत्त ान अतुल फलदायक माना जाता है, परन्तु पशुसाधक को दिया जाने वाला निरर्थक हो जाता है।।२३-२४।।

कुलीनस्य च माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ।
कुलीनञ्चापि संतोष्य मुक्तः कोटिकुलैः सह ।।२५
केवलं कुलयोगेन प्रसीदामि न संशयः ।
चतुर्था श्रमिणां मध्ये अवधूताश्रमो महान् ।।२६

कौलसाधक को दिये जाने वाले दान के फल को कहने में मैं अ
सर्वथा ही असमर्थ पाता हूँ। कौलाचारी को तोषित करने से प्राणी अपनी
पीढ़ियों का उद्धारक बनने के साथ-ही-साथ स्वयं मुक्ति पाने का भी अ
बनता है। मैं केवल उस कुलसाधक के लिए ही यह बात कहता हूँ।
आश्रम के अन्तर्गत जो अवधूत होने का आश्रय लेता है वह अत्यन्त
होता है। समस्त संन्यासियों में अवधूत संन्यासी ही सर्वश्रेष्ठ पदवी प्राप्त
है॥२५-२६॥

तत्राहं कुलयोगेन महादेवत्वमागतः ।
तत्रापि च महादेवि योनिपूजन-तत्परः ।।२७
तव योनिप्रसादेन त्रिपुरं हतवान पुरा ।
द्रौपदीयोनिमाश्रित्य पाण्डवा जयिनो रणे ।।२८

हे महादेवि ! इसी के फलस्वरूप मैं कुलयोग के आश्रय से
प्राप्त करता हूँ। मैं सदैव ही योनिपूजन में सचेष्ट रहा करता हूँ। प्राचीन
तुम्हारी योनि- शक्ति के प्रभाव से ही मैंने त्रिपुर नामक अजेय दैत्य
किया था। इसके अतिरिक्त द्रौपदी की योनिशक्ति का प्रसाद प्राप्त कर पां
महाभारत युद्ध में विजय-लाभ किया था॥२७-२८॥

अभावे कन्यकायोनिं वधूयोनिं तथैव च ।
भागिनीयोनिमाश्रित्य शिष्याणां योनिमाश्रयेत् ।।२९
प्रत्यहं पूजयेद् योनिमन्यथा मन्त्रमर्च्चयेत् ।
वृथा पूजा न कर्त्तव्या योनिपूजां बिना प्रिये ।।३०
अन्यथा जपमात्रेण विहरेत् क्षितिमण्डले ।।३१

इति योनितन्त्रे चतुर्थोऽध्यायः सम्पूर्णम् ।

हे प्रिये ! उपयुक्त योनिपीठ के अभाव में कन्या, वधू, भगिनी या शिष्या योनि का भी ग्रहण किया जा सकता है । अतः मुख्यतः योनिपीठ की ही साधक को करनी चाहिए। यदि ऐसा करना असम्भाव्य हो तो देवताओं के क यन्त्र की पूजा ही विहित होती है। योनिपूजा के अतिरिक्त कोई अन्य पूजन । केवल समय का दुरुपयोग ही कहा जा सकता है ।।२९-३१।।

इस प्रकार योनितन्त्र के चतुर्थ अध्याय की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत व्याख्या समाप्त हुई ।

पञ्चम अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

महाविद्यामुपास्यैव यदि योनिं न पूजयेत् ।
पुरश्चर्या शतेनापि तस्य मन्त्रो न सिद्ध्यते ।।१।।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा योनिगर्त्ते महेश्वरि ।
जन्मान्तर- सहस्राणां पूजा तस्य प्रजायते ।।२।।

श्रीमहादेव ने देवी पार्वती को संम्बोधित करके कहा- हे म
महाविद्या के साधक योनिपूजा के अभाव में सौ बार पुरश्चरण करके भी
सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते । हे महेश्वरि! योनिप्रदेश में तीन बार पु
अर्पित करने वाला उपासक सहस्रजन्मकृत पूजा करने का फल पा लेता है ।।

गुरुरेवः शिवः साक्षात् तत्पत्नी तत्स्वरूपिणी ।
तस्या रमणमात्रेण कौलिको नारकी भवेत् ।।३।।
सर्वसाधारणीं योनिं मर्द्दयेत् साधकोत्तमः ।
तिलकं योनितत्त्वेन तस्य भाले प्रदृश्यते ।।४।।
तत्र देवासुराः यक्षाः भुवनानि चतुर्द्दश ।
श्राद्धे निमन्त्रयेद् विप्रान् कुलीनान यत्र सुन्दरि ।।५।।
तत् श्राद्धं सफलं तस्य पितरः स्वर्गवासिनः ।
नन्दन्ति पितरस्तस्य गाथां गायन्ति ते मुदा ।।६।।

हे देवि! गुरु स्वयं शिवसदृश होता है और गुरुपत्नी साक्षात् शिवा
होती है। अतः जो कौलसाधक इस बात का विचार किये बिना गुरुपत्नी
सहवास करता है वह शीघ्र ही नरककुंड में चला जाता है। कौलाचारी
सामान्य योनि ही मर्दन करने के योग्य होती है। जिसके मस्तक पर योनित
तिलकांकन दृष्टिगोचर हो वहाँ देव-दानव, यक्ष तथा चौदहों भुवनों (सात
लोक एवं सात अधोलोक) का निवास माना जाता है। हे सुन्दरि! जिस
कौलसाधकों को आमन्त्रित किया गया होता है, यथार्थतः वही श्राद्ध
माना जाता है। उसके पितरगण आनन्द-विभोर होकर नर्तन करने ल
है।।३-६।।

अपि नास्मत् कुले जातः कुलज्ञानी भविष्यति ।
यस्या योनौ साधकेन्द्रः पूजनं क्रियते दृढ़म् ।।७।।
तद् योनावंधिष्ठितां देवीं साधको भावयेत् सदा ।
योनितत्त्वं महादेवि सदा गात्रे प्रमर्द्दयेत् ।।८।।

हे महादेवि! उसके पितृगण भविष्य में किसी कुलज्ञानी के जन्म ग्रहण रने का उसे वरदान देकर उसका गुणानुवाद करने लग जाते हैं। उत्तम साधक थरचित्त से जिस किसी भी योनि का पूजन करता हैं तो उस योनि में स्वयं ाद्याशक्ति विराजती और साधक की चिन्ता करती रहती है। साधक को निज ङ्ग में पूर्णकालिक योनितत्त्व का मर्दन करना चाहिए।।७-८।।

तद् गात्रं सफलं तस्य अपि कोटिकुलैः सह ।
स्वलिङ्ग भगगर्त्ते च प्रविशेच्च स्वयं यदि ।।९।।
तदैव महती पूजा लिङ्ग-योनि - समागणे ।
शुक्रोत्सारण-काले च जपपूजापरायणः ।।१०।।

इस विद्या के द्वारा साधक का सम्पूर्ण शरीर सफल हो जाता है। और वह पने करोड़ों वंशजों के साथ मोक्षलाभ करने में सामर्थ्यवान बन जाता हैं। जो पासक योनिगह्वर में अपने लिंग को प्रविष्ट करा देता है तो योनिलिंग के हवास से उसकी महती पूजा निष्पन्न हो जाती है। वीर्यस्खलन काल में साधक ो जापसंलग्न तथा पूजामग्न रहना चाहिए।।९-१०।।

तत् शुक्रं योनितत्त्वञ्च मिश्रयित्वा विधानतः ।
योनिगर्त्ते साधकेन्द्रः प्रदद्याद्धुति वृद्धये ।।११।।
तदा श्रीचरणाद्देवीं समुत्पति तेऽङ्गने ।
पूजाकाले च देवेशि अन्यालापं विवर्ज्जयेत् ।।१२।।

हे देवेशि! इस क्षरित हुए शुक्र (वीर्य) और योनितत्त्व को विधिपूर्वक लित करके साधक को अपने विभववर्धन के हेतु योनिगुहा में प्रक्षेपित कर ना चाहिए। इसके पश्चात् देवी के चरणों में नमन करे । हे देवि! पूजन-काल साधक को किसी से वार्ता करना भी वर्जित है।।११-१२।।

कामशास्त्र प्रसङ्गेन तद् योनिं लालयेत् बुधः ।
मातृयोनिं पुरस्कृत्य यदि पूजां करोति यः ।।१३
पूजयित्वा विधानेन मैथुनं न समाचरेत् ।
परित्यज्य तद् योनिं क्षतमात्रञ्च ताडयेत् ।।१४
यदि भाग्यवशेनापि ब्राह्मणी मिलिता प्रिये ।
तद् योनितत्त्वमादाय अन्ययोनिं प्रपूजयेत् ।।१५

हे पार्वति! साधक को कामासक्त होकर केवल पूजित योनि को सन्तुष्ट करने का विधान बतलाया गया है। यदि मातृयोनि की पूजा की गई तो उसे मैथुन कर्म परित्याग कर केवल पूजन करना ही श्रेयस्कर होता है

यदि कदाचित् संयोगवश कुलशक्ति के रूप में ब्राह्मणी नारी मिल तो सबसे पहले उसके योनि की पूजा कर अन्य योनियों का पूजन-अ करे।।१३-१५।।

पञ्चतत्त्वं बिना देवि पशुदीक्षा वृथा भवेत् ।
ओंकारोच्चारणाद्धोमात् शालग्राम-शिलार्च्चनात् ।।१६
ब्राह्मणीगमनाच्चैव शूद्रो चाण्डालतां व्रजेत् ।
शक्तिं कुलगुहं देवि आश्रयेद्बहुयत्नतः ।।१७
पशुदीक्षां समादाय यदि पूजापरायणः ।
तस्य दीक्षा च विद्या च नरकायोपपद्यते ।।१८

हे देवि! पंचतत्त्व के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की पूजाएँ पशु तुल्य मानी जाती है अर्थात् उसकी समस्त साधनाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। यदि वर्ण का पुरुष ओंकार (प्रणव) शब्द का उच्चारण करे अथवा किसी ब्राह्मण समागम करे तो वह चाण्डालत्व को प्राप्त हो जाता है। शक्तिपीठ के आर को प्रयत्नपूर्वक कुलगुह का ही आश्रयण करना प्रशस्त है। यदि पशुदीक्ष व्यक्ति कुलाचार पूजाविधि में संलग्न हो तो उसकी प्राप्त दीक्षा तथा मन्त्र- ही उसे नरक में ढकेल देते हैं।।१६-१८।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलीनं गुहमाश्रयेत् ।
कुलीनं गुहमाश्रित्य यदि पूजां समाचरेत् ।।१९

तदा योनिः प्रसन्ना स्यात् कृष्णे राधाभगं यथा ।
सीताभगं रामचन्द्रे तव योनि र्मयि प्रिये ।।२०।।

साधक को किसी कुलीन गुरु (कौलाचारी गुरु) के ही शरणागत होना हिए। श्रीकृष्ण के प्रति श्रीराधिका की योनि (शक्ति) जिस प्रकार प्रसन्न रहा रती थी या श्रीरामचन्द्र के लिए जिस भाँति सीतायोनि प्रिय रहती थी अथवा त्रयं तुम्हारी योनि (शक्ति) मेरे प्रति जिस प्रकार सन्तुष्ट तथा प्रसन्नमुखी रहती उसी प्रकार यदि साधक भी कौलगुरु का शरण लेकर कुलाचारवत् पूजन कर्म प्रवृत्ति रखे तो उसकी भी योनि (शक्ति) सदैव उसके प्रति भी उपर्युक्त योनि ो भाँति ही प्रसन्न रहती है।।१९-२०।।

योनिकुन्तलमादाय यदि राजगृहं ब्रजेत् ।
तस्य कार्याणि सर्वाणि फलवन्ति न संशयः ।।२१।।
तदा लिङ्गञ्च सम्पूज्य पूजयेत् शक्तिरूपिणीम् ।
तिलकं योनितत्त्वेन पुष्पेण धारयेद् यदि ।
स निर्भर्तस्य यमं मन्त्री दुर्गालोके महीयते ।।२२।।

यदि आराधक योनिकुंतल (केश) लेकर किसी राजदरबार में प्रवेश करता है तो उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाया करते हैं। इसमें लेशमात्र भी संशय करने का स्थान नहीं है।

प्रथम लिंगपीठ का पूजन करके शक्तिपीठ का पूजन करे। उस योनितत्त्व था अपने आप उत्पन्न हुए पुष्प को एक साथ मिलित कर जो साधक अपने स्तक पर तिलकांकन कर ले तो वह यमराज को फटकारते हुए भी दुर्गालोग ं प्रविष्ट हो जाता है।२१-२२।।

पार्वत्युवाच

कया च विधया पूज्या योनिरुपा जगन्मयीं ।
किं कृते च प्रसन्ना स्यात् वद मे करुणानिधे ।।२३।।
स्वयं वा पूजयेद् योनिं अथवा साधकेन च ।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं मम ।।२४।।

पार्वती ने पूछा– हे करुणानिधे ! किस रीति के अनुसार जगन्माता योनि आद्याशक्ति का अर्चन किया जाय अथवा उनके निमित्त वे कौन से कार्य चाहिए जिससे उनकी प्रसन्नता साधक के ऊपर बनी रहे। इसे जानने के लिए मन में अत्यधिक लालसा एवं जिज्ञासा है।।२३-२४।।

श्रीमहादेव उवाच

साधकेन पूजितव्या योनिरूपा जगन्मयीं ।
तया लिङ्गं समुद्धृत्य पूजयेत् शक्तिरूपिणीम् ।।२५।।
भगरूपा महामाया लिङ्गरूपः सदाशिवः ।
तयोः पूजनमात्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः ।।२६।।

प्रश्नों का उत्तर देते हुए शिव जी ने पार्वती से उन्मुख होकर कहा- देवि! योनिरूपिणी आद्याशक्ति जगन्माता की पूजा साधक को स्वयमेव ही क चाहिए। उसे लिंगरूप सदाशिव तथा भगरूपा शक्तिस्वरूपिणी महामाया पूजन करना उचित है। शिवशंकर एवं आद्याशक्ति भगवती की पूजा करने से ही साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। अर्थात् वह सांसारिक आवागमन के ब से छूट जाता है। इसमें रंचमात्र भी आशंका नहीं करनी चाहिए।।२५-२६।

पुष्पादिकं बलिञ्चैव पूजासामग्रीमेव च ।
यदि नैव तदा दुर्गे कारणेन प्रपूजयेत् ।।२७।।
मनुना केवलनापि तदा योनिं प्रपूजयेत् ।
प्राणायामो योनिगर्त्ते षडङ्गं मायया प्रिये ।।२८।।

हे दुर्गे! पुष्पादि द्रव्य तथा बलिप्रदान की सामग्रियाँ यदि अनुपलब्ध तो केवल मदिरा द्वारा ही शक्तिपूजन सम्पन्न करना चाहिए। अथवा पूजन-सा के अभाव में केवल मन्त्रपाठ के द्वारा ही पूजा पूर्ण करे। योनिगर्त अर्थात् वे स्थान में प्राणायाम के पश्चात् मायाबीज 'ह्रीं' के द्वारा षडंग न्यास करना सा के लिए आवश्यक माना जाता है।

दोनों जाँघें, दोनों भुजाएँ, मस्तक तथा कटिप्रदेश। इन्हीं छह अंगों षडंग के नाम से जाना जाता है।

षडंगन्यास विधि इस प्रकार से वर्णित है–

(१) 'ॐ ह्रीं हृदयाय नमः' कहकर हृत्प्रदेश का, (२) 'ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा' बोलकर शिरोभाग का, (३) 'ॐ हुं शिखायै वषट्' मन्त्र के द्वारा शिखा स्थान का,(४) ' ॐ हैं कवचाय हुम् ' मन्त्रोच्चारपूर्वक नाभिप्रदेश का, (५) 'ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्' वाक्य पढ़कर नेत्रों का तथा (६) ॐ ह्रः करतलकर-पृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्' के द्वारा हाथ की हथेलियों का स्पर्शपूर्वक न्यास कर्म करना चाहिए।

योनिमूले शतं जप्त्वा लिङ्गयोनिं प्रमार्जयेत् ।
सर्वेषां साधनानाञ्च सुसमं परिकीर्तितम् ।।२९।।

तदनन्तर योनि के मूल में एक सौ आठ बार मन्त्रजाप – 'मूलाधारे पद्मेस्थिता शिवशक्तिमूले' करके लिंग (शिव) तथा योनि (शक्ति स्थान) का शोधन कर डाले। इस प्रकार समस्त साधना की सरल पद्धति मैंने तुमसे कही है।।२९।।

एतत् तन्त्रञ्च देवेशि न प्रकाश्यं कदाचन ।
न देयं परशिष्येभ्योऽभक्तेभ्यो विशेषतः ।।३०।।
योनितत्त्वं महादेवि तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।।३१।।

इति योनितन्त्रे पञ्चमोऽध्यायः सम्पूर्णम् ।

हे देविश! इस तन्त्र. का विधान किसी को नहीं बतलाना चाहिए। किसी अन्य के शिष्य अथवा अनास्थावान व्यक्ति को कदापि नहीं बतलाना चाहिए। यह योनितत्त्व परम गोपनीय होने पर भी मैंने इसे केवल तुम्हारे स्नेह के कारण ही प्रकटित किया है।।३०-३१।।

इस प्रकार योनितन्त्र के पंचम अध्याय की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

षष्ठ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

स्नानकाले च देवेशि यदि योनिं निरीक्षयेत् ।
सफलं जीवनं तस्य साधकस्य सुनिश्चितम् ।।१।।
स्वयोनिं परयोनिं वा वधूयोनिं विशेषतः ।
अभावे कन्यकायोनिं शिष्यायोनिं निरीक्षयेत् ।।२।।

शिवजी ने कहा– हे देवेशि! यदि साधक स्नानादि कर्म करते सम विशेष भावयुक्त होकर योनि का निरीक्षण करे तो ऐसे साधक का जन्म धार करना सफल हो जाता है। यह बात पूर्णरूपेण सत्य है।

स्वकीया या परकीया नारी, विशेषतः वधू की योनि अथवा इनके अभ में अपनी शिष्या की योनि का अवलोकन करने से भी साधक को उपर्युक्त फ की प्राप्ति होती है ॥१-२॥

एतत् तन्त्रं महादेवि यस्य गेहे विराजते ।
नाङ्गिचौरभयं तस्य अन्ते च मोक्षभाक् भवेत् ।।३।।
पश्वादियोनिमाश्रित्य अभावे च प्रपूजयेत् ।
योनिपूजनमात्रेण साक्षाद् विष्णुर्न संशयः ।।४।।

हे महादेवि! जिसका घर इस प्रकार के तन्त्र से परिपूर्ण हो अर्थात् ज इसका अनुपालन किया जाता हो उसके आवास स्थान में चौरादि का भय न रह जाता तथा वह प्राणी अन्तकाल में मोक्ष का भागी बन जाता है। यदि पूज के निमित्त कुलांगना की योनि उपलब्ध न हो सके तो साधक पशु की योनि काम में ला सकता है। योनिपूजन मात्र से ही वह आराधक साक्षात् स्वयं वि के सदृश बन जाता है। इसमें किसी प्रकार का संशय मन में नहीं रख चाहिए।।३-४।।

स्वर्गलोके च पाताले सम्पूज्य च सुरासुरैः ।
वीरसाधन-कर्माणि दुःखलभ्यानि केवलम् ।।५।।
सुगमं साधनं दुर्गे तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।

योनितत्त्वं समादाय संग्रामं प्रविशेद् यदि ।।६।।

हे देवि! स्वर्गपुरी में देवताओं तथा पातालपुरी में वीरसाधन करके यदि साधक सिद्धि प्राप्त भी कर लेता है तो उसके लिए ऐसी सिद्धियाँ अन्त में दुःखदायी ही सिद्ध होती हैं, परन्तु हे दुर्गे! तुम्हारे स्नेह के वशीभूत होकर ही मैंने यह सरल साधन पद्धति तुम्हें बतलायी है। यदि कोई साधक योनितत्त्व धारण कर रणभूमि में प्रस्थान करता है।।५-६।।

जित्वा सर्वानरीन दुर्गे विजयी च न संशयः ।
किं गङ्गास्नानमात्रेण किम्वा तीर्थनिषेवणात् ।।७।।
नास्ति योनौ समा भक्तिरन्यत् सर्वं वृथा भवेत् ।
पञ्चवक्त्रैश्च देवेशि योनिमाहात्म्यमेव च ।।८।।

तो वह अपने सम्पूर्ण वैरियों को परास्त कर विजयश्री का लाभ करता है। ऐसे आराधक को क्या फल मिल सकता है जो केवल गंगास्नान तथा तीर्थाटन करने में ही संलग्न रहा करता है? योनिपीठ-पूजन के अतिरिक्त की गयी सभी साधनाएँ व्यर्थ चली जाती है। हे देवेशि! मैं पंचमुखधारी होकर भी योनि-माहात्म्य का वर्णन करने में सर्वथा ही अपने को असमर्थ पाता हूँ।।७-८।।

तदा वक्तुं न शक्नोमि शृणुष्व नगनन्दिनि ।
तव योनिप्रसादेन महादेवत्वमागतः ।।९।।
नवीन कुन्तलां योनिं मर्द्दयेत् यो हि साधकः।
स मुक्तो हि महद्दुःखात् घोरसंसारसागरात् ।।१०।।

हे नगनन्दिनि! केवल तुम्हारी योनि (शक्ति) पूजन के फलस्वरूप ही मैंने शिवत्व प्राप्त किया है। हे देवि! जो साधक नवीन कुंतला योनि का मर्दन करता है वह इस अपार दुःखकारी भवसागर से पार चला जाता है।।९-१०।।

बहुना किमिहोक्तेन शृणु पार्वति सुन्दरि ।
वक्तुं कोहपि योनितत्त्वं लोके कोऽपि प्रशस्यते ।।११।।
शिवविष्णुं विना देवि कः क्षमो वर्णितुं भवेत् ।
क्षमस्व मम दौर्बल्यं मात-र्दुर्गे क्षमस्व मे ।।१२।।

चापल्यात्तुं मया किञ्चित् वर्णितं तव सन्निधौ ।।१३।।

हे देवी पार्वति ! इस विषय में मैं और अधिक क्या कह सकता हूँ? इ
योनितत्त्व का समस्त कथन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? इस तत्त्व क
कथन करने में विष्णु एवं शिव के अतिरिक्त अन्य कौन प्राणी हो सकता है
हे माते, हे दुर्गे ! मैंने तुमसे योनितत्त्व के सम्बन्ध जो कुछ भी वर्णन किया है
उसे तुम केवल मेरी चंचलता ही समझो । मेरी इस धृष्टता तथा निर्बलता के
लिए तुम मुझे क्षमा प्रदान कर दो।।११-१३।।

देव्युवाच

देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ।
वीरसाधन-कर्म्माणि श्रुतानि तन्मुखात् प्रभो ।।१४।।
सुगमं साधनं देव श्रुतं बहुविधं मया ।
यत् त्वया कथितं देव कलौ तच्च कथं भवेत् ।
विश्वासोऽत्र महादेव संशयोऽभूत् सदा मम ।।१५।।

महादेव के प्रति उन्मुख होकर देवी पार्वती बोलीं– हे देवदेव जगन्नाथ
आप ही इस सृष्टि के उत्पादक, पालक तथा संहारक हैं । मैंने आपके श्रीमु
से वीर-साधनादि एवं अन्यान्य साधन कर्म भी श्रवण किया है । हे देव! आप
जिस साधन- पद्धति का वर्णन किया है वह साधना कलियुग में किस प्रक
फलीभूत होगी, यही संशय मेरे अन्तःकरण में सर्वदा बना रहता है।।१४-१५

महादेव उवाच

शृणु पार्वतिचार्वङ्गि शृणुष्व नगनन्दिनि ।
शृणु त्वं परया भक्त्या सावधानं शृणुष्व मे ।।१६।।
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणान्तेऽपि न संशयः ।
स्वयोनिरिव देवेशि गोपनीयं सदा प्रिये ।।१७।।

शिवजी बोले– हे नगनन्दिनी पार्वति! मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे तु
भक्तिपूर्वक सावधान चित्त से सुनो । इस विद्या की पद्धति का वर्णन जीवन
पर्यन्त किसी सामान्य व्यक्ति से नहीं करना चाहिए। हे प्रिये! अपनी योनि
समान ही इस विद्या को भी सदैव ही गुप्त रखना चाहिए ।।१६-१७।।

निगूढंते प्रवक्ष्यामि सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ।
यस्यानुष्ठानमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति ।।१८।।
योनिरूपा महामाया लिङ्गरूपः सदाशिवः ।
रेतसा तर्पणं तस्या मद्यैर्मांसैश्च सुन्दरि ।।१९।।

मैं तुमसे इस विद्या की सत्यता तथा गूढ़ता का वर्णन करता हूँ। जिसके नुष्ठान का आश्रयण कर साधक इस दुस्तर भवार्णव से तर जाता है। महामाया द्याशक्ति योनिस्वरूपिणी तथा सदाशिव ही लिंगस्वरूप माने जाते हैं। इस ा में मदिरा-मांस तथा रेत (शुक्र) के द्वारा ही महादेवी आद्याशक्ति का तर्पण ना उचित होता है।।१८-१९।।

योन्यां लिङ्गं समुत्क्षिप्य तत्त्वमादाय सुन्दरि ।
योनौ किञ्चिद्विनिक्षिप्य शक्तौ सर्वं समर्पयेत् ।।२०।।
तत्त्वेन तोषयेद्देवीं भगरूपा जगन्मयी ।
प्रत्याद्यातेन देवेशि ब्रह्महत्या व्यपोहति ।।२१।।

हे देवेशि! योनि से लिंग निक्षेपण के पश्चात् योनि से तत्त्व का संग्रहण र उसके अल्पांश को योनि में निक्षेपण करने के अनन्तर शेष सभी तत्त्व द्याशक्ति भगवती को अर्पण कर दे। योनितत्त्व द्वारा भगरूपिणी जगन्माता की न्तुष्टि कर देनी चाहिए। इस रीति से महादेवी को सन्तुष्ट न करने पर साधक ह्महत्या के पाप का पातकी बन जाता है।।२०-२१।।

नाल्पपुण्यरतां दुर्गे विश्वासो जायते ध्रुवम् ।
विश्वासात् सिद्धिमाप्नोति विश्वासान्मोक्षमेव च ।।२२।
अविश्वास च देवेशि नरकं जायते ध्रुवम् ।
सर्वसाधन मध्ये तु योनिसाधनमुत्तमम् ।।२३।।

हे दुर्गे! इस प्रकार की साधना से महान पुण्य का फल निश्चय ही विश्वास उत्पत्ति कराता है। विश्वास के फलस्वरूप सिद्धि की प्राप्ति तथा सिद्धि मिलने मोक्ष- लाभ होता है। इस साधना विधि में अविश्वासी बनकर निःसंदेह रूप साधक को नरक भोगना पड़ता है। सम्पूर्ण प्रकार की साधनाओं में योनिपीठ धन को ही सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।।२२-२३।।

भुक्त्वा पीत्वा च देवेशि यदि योनिं प्रपूजयेत् ।
कोटिजन्मार्ज्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।।२४
भोगेन लभते मोक्षं भोगेन लभते सुखम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साधको भोगवान् भवेत् ।।२५

हे देवि! जो साधक भोजन तथा पान कर्म निष्पन्न करने के अ योनिपीठ का पूजन करता है, उसके करोड़ों जन्म के अर्जित पातक उसी नाश को प्राप्त हो जाते हैं। इस साधना के अन्तर्गत भोग के द्वारा सौख्य भोग के द्वारा ही साधक मोक्ष का भागी बनता है। अत: ऐसी साधना सम्पन्न के निमित्त साधक को सदैव ही भोग के लिए उद्यत रहना पड़ता है।।२४-२

योनिनिन्दाघृणालज्जां वर्ज्जयेन्मतिमान् सदा ।
कुलाचार-प्रसङ्गेन यदि योनिं न पूजयेत् ।।२६
किं तस्य साधनै र्लक्षैः सर्वं तस्य वृथा भवेत् ।
सूक्ष्मांशुना योनिगर्त्तं मार्ज्जनं कुरुते यदि ।।२७
तस्य देहस्य गेहस्य पापं विनश्यति ध्रुवम् ।
किं गङ्गास्नानमात्रेण किम्वा तीर्थनिषेवनात् ।।२८

सुधी साधक को सदैव ही योनिनिन्दा, घृणा तथा लज्जा का परि कर देना चाहिए। कुलाचार की रीति से योनिपूजन न करने पर साधक पूर्वकृत अनेक साधनाएँ भी निरर्थक हो जाती हैं। यदि कोई साधक सूक्ष्म भी शक्तिकेन्द्र (योनिगर्त) का मार्जन करता है तो उसके शरीरगत तथा गृ समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। केवल गंगास्नान या तीर्थाटन कर लेने से ही लाभ नहीं होता है।।२६-२८।।

पूज्यते साधकेन्द्रेण भगरूपा सदा प्रिये ।
बहुना किमिहोक्तेन शृणुष्व प्राणवल्लभे ।।२९
पूजनं साधकानाञ्च सर्वसाधारणं प्रिये ।
पञ्चतत्त्वं बिना देवि चतुर्थञ्च वृथा भवेत् ।।३०

हे प्रिये! योनिस्वरूपिणी महादेवी का पूजन-अर्चन करना ही उपासक प्रमुख कर्तव्य होता है। हे प्राणवल्लभे ! इस सम्बन्ध में अधिक कहने से ा लाभ? मैं जो कहता हूँ उसे सुनो । कौलाचारियों द्वारा किया जाने वाला जन तो एक साधारण कार्य समझा जाता है। वे पंचतत्त्व पूजन के अभाव में तुर्थ विधि द्वारा ही की गयी पूजा निष्फल चली जाती है ॥२९-३०॥

पञ्चमात्तु परं नास्ति शाक्तानां सुखमोक्षयोः ।
बिना शक्त्या च यत् पानं तत् सर्वं विफलं भवेत् ।।३१।।
शक्त्युच्छिष्टं पिबेत् द्रव्यं वीरोच्छिष्टञ्च चर्व्वणं ।
एवं कृत्वा महायोनिं पूजयित्वा दिवानिशम् ।।३२।।

शक्ति उपासक के लिए मैथुन (रकार वर्ण कुंकुम वर्णीय कुंड में अवस्थित ना जाता है । मकार वर्ण बिन्दु रूप से महायोनि में स्थित रहता है। अकार वर्ण ी ही हंसरूप में परिकल्पना की जाती है। उन दोनों का एकत्व हंसारूढ होने पर होता है। इसी एकात्मकता के कारण ही साधक को महान आनन्द की अनुभूति था ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि होती है। शाक्त पूजन में इसी को मैथुन कहा जाता है) बढ़कर अन्य कोई मार्ग नहीं होता है। कुलशक्ति के अतिरिक्त पान किये हुए अन्य दार्थ व्यर्थ सिद्ध होते हैं। शक्ति की उच्छिष्ट (मदिरा) पान एवं वीरोच्छिष्ट का चर्वण रना चाहिए। उपर्युक्त विधान में भगवती की योनिपीठ का पूजन रात-दिन निरन्तर रना पड़ता है।।३१-३२।।

भुक्त्वा पीत्वा महेशानि विहरेत् क्षितिमण्डले ।
विधृत्य तुलसीमाल्यं कुर्याच्च हरिमन्दिरम् ।।३३।।
कथोपकथनं वापि श्रीहरेर्गुणकीर्त्तनम् ।
हरिनाम्ना जातभावो विहरेत् पशुसन्निधौ ।।३४।।

महेशानि! इसके अनन्तर भोजन-पान करके साधक को भूमण्डल में भ्रमण रना चाहिए। यदि वह किसी कारणवश पशुसाधक के सम्पर्क में आ जाय तो से गले में तुलसी की माला पहन कर विष्णुमन्दिर में निवास करते हुए हरि ाव में तत्पर रहकर पशुसाधक के सन्निकट परिभ्रमण करना चाहिए।।३३-३४।।

गुप्ता गुप्ततरा पूजा प्रकटात् हानिरेव च ।
वरं पूजा न कर्त्तव्या पशोरग्रे च पार्वति ।।३
पुष्पाञ्जलित्रयेणापि यदि योनिं प्रपूजयेत् ।
तस्या लभ्यानि कर्म्माणि न सन्ति भुवनत्रये ।।३

इति योनितन्त्रे षष्ठाऽध्यायः सम्पूर्णम् ।

हे पार्वति!यह साधनापद्धति अत्यन्त ही गोपनीय है। इस विद्य
प्रकटीकरण से साधक की पूरी साधना निष्प्रभावी हो जाती है। वरं पशु के स
पूजा करने का निषेध किया गया है। यदि उपासक केवल तीन बार पुष्पां
अर्पित कर योनिपीठ का पूजन करे तो भी उसके लिए त्रैलोक्य की कोई
अप्राप्य नहीं रह जाती है।।३५-३६।।

इस प्रकार योनितन्त्र के षष्ठ अध्याय की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठी
हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

सप्तम अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि वीरसाधनमुत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तश्च साधकः ।।१।।
दिव्यस्तु देववत् प्राणो वीरश्चोद्धतमानसः ।
यद्देशे विद्यते वीरः स देशः पूज्यते सुरैः ।।२।।

शिवजी ने कहा– हे महेशानि! अब मैं तुम्हें वीरसाधन के सम्बन्ध में लाऊँगा। जिसके विषय में साधक ज्ञान प्राप्त करके सांसारिक आवागमन से हो जाता है। दिव्य साधना करने वाले साधक देवता के सदृश होते हैं परन्तु साधक उच्छृंखल तथा प्रचण्ड स्वभाव के होते हैं । जिन प्रदेशों में वीरसाधकों निवास होता है उस प्रदेश की पूजा देवता भी करते हैं ।।१-२।।

वीरदर्शनमात्रेण तीर्थ कोटिफलं लभेत् ।
वीरहस्ते जलं दत्त्वा मुक्तः कोटिकुलैः सह ।।३।।
वीरं सन्तोष्य देवेशि किमलभ्यं जगत्रये ।
वीराणां जपकालस्त सर्वकालः प्रशस्यते ।।४।।

वीरसाधक के केवल दर्शनमात्र से ही प्राणी करोड़ों तीर्थस्थल के दर्शन फल सहज ही प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति वीरसाधक को जल का दान है वह अपनी करोड़ों पीढ़ियों के साथ मुक्तिलाभ करता है। हे देवेशि! साधक को प्रसन्न करने के पश्चात् उसके लिए त्रैलोक्य में कोई भी पदार्थ प्य नहीं रह जाता है। वीरसाधकों के जप-काल का कोई समय-विशेष र्दिष्ट नहीं होता । किसी भी समय जाप करना उपयुक्त समझा जाता है।।३-४।।

बिल्वमूले श्मशाने वा प्रान्तरे वा गृहेऽथवा ।
एकलिङ्गे महायोनौ जप्यते साधकोत्तमैः ।।५।।
सर्वेषामन्नमाश्रित्य कुर्यात् स्वोदरपूरणम्।
मद्यं-मांस बिना देवि क्षणोद्ध्वं न जीवति ।।६।।

हे देवि! श्रेष्ठ वीरसाधक बिल्वमूल, श्मशान-भूमि, वन-प्रान्त, ए शिवमंदिर अथवा योनिपीठ में बैठकर किसी भी काल में जाप कर सक वीरसाधक को वीरमन्त्र के आश्रित रहकर अपनी क्षुधापूर्ति करनी चाहिए। एवं मांसादि के बिना वह क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता है॥५-६॥

तस्मात्भुक्त्वा च पीत्वा च विहरेत्क्षितिमण्डले।
सर्वेषामन्नमासाद्य भोजनं चाकुतोभयम् ॥७॥
मैथुनञ्च महेशानि सर्वयोनौ प्रशस्यते।
कदाचिच्चन्दनेनापि कदाचित् सुरयापि वा ॥८॥

हे महेशानि! वीरसाधक वीराचार विचार के अनुरूप भोजन एवं पा वह सदैव ही भूमण्डल में परिभ्रमण करता रहता हैं। वह सभी प्रकार के पदार्थों का नि:संकोच भाव से ग्रहण कर लेता है। हे देवि! वीरसाधना करने के लिए सभी प्रकार की योनि ग्राह्य होती है। वह साधक अपने शरीरांग पर चन्दन तथा कभी मदिरा का भी लेपन करता है॥७-८॥

लेपनञ्च सदा कुर्यात् पङ्केन रजसापि वा।
सदानन्दमयो दुर्गे वीरश्चापि विराजते ॥९॥
तत् साधनमहं वक्ष्ये सर्वं सर्वार्थसाधनम्।
स्नानादिर्मानसः शौचो मानसः प्रवरो जपः ॥१०॥

हे दुर्गे! ऐसा साधक अपनी देह पर कभी धूल एवं कभी कीचड़ भ लेता है। वह सदा ही आनन्दमग्न रहा करता है। मैं वीरसाधक के सम्ब तुमसे वर्णन कर रहा हूँ। ऐसी साधना में स्नानादि, शौचादि एवं जपादि क्रि भी मानसिक रूप से होती हैं ॥९-१०॥

पूजनं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम्।
सर्वं एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् ॥११॥
न विशेषो दिवारात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि।
वस्त्रासनं स्नान -गेह- देहस्पर्शादिकेष्वपि ॥१२॥

इस साधना में दिव्यपूजा तथा तर्पणादि कर्म भी मानसिक ही हुआ हैं। इसमें काल का विचार या निर्धारण नहीं किया जाता है। सभी समय

ने जाते है। ऐसी साधना के लिए दिन-रात, सायंकाल या अर्धरात्रि का कुछ विचार नहीं करना चाहिए। इसमें वस्त्रासन, स्नान, स्थान, शरीरस्पर्शादि हो ने पर भी उसकी शुद्धता एवं अशुद्धता का ध्यान नहीं रखा जाता है।।११-१२।।

शुद्धिं विचारयेन्नात्र निर्विकल्पं मनश्चरेत् ।
दिक्काल-नियमो नास्ति स्थित्यादि-नियमो न च ।।१३।।
न जपे काल - नियमो नार्च्चादिषु बलिष्वपि ।
स्त्रीद्वेषो नैव कर्त्तव्यो विशेषात् पूजनं स्त्रियाः ।।१४।।

इसके लिए साधनकर्ता को विचाररहित होकर साधना करनी चाहिए। समें दिशा, काल,अवस्था आदि का कुछ भी भेदाभेद नहीं होता । सभी कुछ क समान होता है। यहाँ तक कि बलि-पदार्थ, जप संख्या, पूजन-विधि आदि भी किसी प्रकार के नियम पालन की आवश्यकता नहीं रह जाती । साधक कभी किसी स्त्री से द्वेष की भावना नहीं रखनी चाहिए। उसे नारीपूजन विशेष व से करने की आवश्यकता होती है।।१३-१४।।

स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् यत्र कुत्रापि साधकः ।
दत्त्वा भक्ष्य जपेन्मत्रं भक्ष्यद्रव्यं यथारुचि ।।१५।।
स्वेच्छानियमः सम्प्रोक्तो वीरसाधनकर्मणि ।
स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रियः परमभूषणम् ।।१६।।

यदि किसी स्थान पर कुलांगना का आगमन, दर्शन या साधक का उससे र्श हो जाय तो उसे भोज्य पदार्थ अर्पित कर स्वयं साधक को भी उस पदार्थ भक्षण करना चाहिए। तदनन्तर उसे मन्त्रजाप प्रारम्भ कर देना चाहिए। इस रसाधन के निमित्त साधक को स्वेच्छाचारी बनकर कार्य सम्पन्न करना ही चित माना गया है। इसमें किसी भी प्रकार का बन्धन या निषेधात्मक नियम का धान नहीं है। इस साधना में साधक के लिए केवल नारी ही उपास्या, प्राणभूता था आभरणस्वरूपिणी होती है।।१५-१६।।

स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्व-स्त्रियामपि ।
तदुक्तं भावसर्वस्वे सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।।१७।।

वीरसिद्धि - विधानन्तु तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
द्रव्य-भक्षणकाले च आदौ शक्तौ निवेदयेत् ।।

स्वनारी में सर्वदा ही शक्तिस्वरूपिणी का भाव रखना चाहिए। यह सभी तन्त्रों में गोपनीय है, परन्तु मैंने तुम्हारे स्नेहाभिभूत होकर ही इसे किया है। इस वीरसाधना में किसी खाद्य पदार्थ के ग्रहण करने से पूर्व उसे को अर्पित करना चाहिए।।१७-१८।।

अथवा प्रथमं भागं निक्षिपेज्जलमध्यतः ।
श्मशाने प्रान्तरे गत्वा शक्त्या युक्तोऽपि साधकः ।।
भुक्त्वा द्रव्यं जपेन्मन्त्रं जप्त्वा मैथुनमाचरेत् ।
शुक्रोत्सरणकाले च शृणु पार्वति सुन्दरि ।।
योनितत्त्वं समादाय तिलकं क्रियते यदि ।
शतजन्मार्ज्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।।

यदि शक्ति को भोज्य वस्तु अर्पण न करे तो उस पदार्थ का पहल जल में डाल देना चाहिए। तदनन्तर साधक को शक्तिवान होकर किसी भूमि अथवा श्मशान-भूमि में बैठकर, उस भोज्य पदार्थ का भक्षण कर बाद जाप करना चाहिए। जप समाप्ति के अनन्तर साधक को मैथुन में हो जाना चाहिए।

हे पार्वति! सुनो । वीर्यस्खलन काल में साधक योनितत्त्व ग्रहण यदि उसका तिलक मस्तक पर लगा ले तो उसके सैकड़ों जन्म के उ पातक उसी क्षण नाश को प्राप्त हो जाते हैं ।।१९-२१।।

प्रेतभूमेरभावे च शून्यालयगतेऽपि च ।
तद्भावे जपेन्मन्त्री निच्छिद्र- गृहमध्यतः ।।२२।।
प्राणान्ते च महेशानि न वदेत् पशुसन्निधौ ।
वीरनिन्दा वृथा पानं वृथा मैथुनमेव च ।।२३।।

यदि साधक को श्मशानभूमि की अनुपलब्धता हो तो उसे सूनसान स्थान में बैठकर सभी कार्य सम्पन्न करने चाहिए। उसी भावना नि:च्छिद्र स्थान में रह कर अपनी साधना करनी चाहिए। हे पार्वति! प्र

कण्ठगत होने पर भी पशुसाधक के समक्ष इस विधान का कथन करना अनुचित है। वीरसाधना पद्धति अपनाने के लिए निष्प्रयोजन ही उपासक को सुरापान, वीरनिन्दा तथा मैथुन नहीं करना चाहिए।।२२-२३।।

वृथान्नं वर्ज्जयेन्मन्त्री वीरसाधनकर्म्मणि ।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रां मैथुनमेव च ।।२४।।
पञ्चतत्त्वं बिना दुर्गे न वीरो जायते भुवि ।
तस्मात् भुक्त्वा च पीत्वा च जपेन्मन्त्री महामनुम् ।।२५।।

उस साधक को व्यर्थ भोजन का भी परित्याग कर देना चाहिए। हे दुर्गे! इस भूतल पर कोई भी साधक मदिरा, मांस, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथन का परित्याग कर वीरसाधना में सफल नहीं हो सकता। अत: इन पंचतत्त्वों का उपभोग तथा पानादि कर्म करने के पश्चात् ही उसे वीरसाधना में तत्पर होना चाहिए।।२४-२५।।

अति गुह्यतमं देवि वीराणां साधनं प्रिये ।
किं द्रव्य-साधनैर्लक्षैः किं वीरसाधनैस्तथा ।।२६।।
किं कोटिशतजपैश्च पुरश्चर्या- शतैस्तथा ।
किं तीर्थसेवनैर्लक्षैः किंवा तन्त्रादि-सेवनैः ।।२७।।

हे देवि! वीरसाधना पद्धति अत्यन्त गोपन करने योग्य है। लाखों प्रकार की दिव्यसाधना तथा वीरसाधना का क्या फल होता है? शतकोटि जाप या पुरश्चरण करने का क्या फल मिलता है? लाखों तीर्थाटन अथवा तन्त्रादि सेवन का क्या फल?

किं पूजा शतलक्षैश्च किं दानैस्तपसापि च ।
भगं बिना महेशानि सर्वञ्चैव वृथा भवेत् ।।२८।।
योनिपूजनमात्रेण सर्वसाधनभाग् भवेत् ।
तर्पणं योनितत्त्वेन पितरः स्वर्गगामिनः ।।२९।।

हे महेशानि! शतलक्ष पूजन,दान तथा तपश्चरण आदि का भी क्या फल? आद्याशक्ति भगवती की पूजा किये बिना ये सभी कार्य व्यर्थ हैं। केवल योनिपूजन के द्वारा ही ये समस्त कार्य सिद्धिदायक होते हैं। स्वर्गगामी पितरों का तर्पण भी योनितत्त्व के द्वारा करना ही उचित कहा गया है।।२८-२९।।

लालयेच्च सदा योनिं कुन्तला-कर्षणादिना ।
क्रोड़े कृत्वा महायोनिं ताण्डवं कुरुते यदि ।।३०।।
तदां जन्मायुतैः पापैमुक्तिः कोटिकुलैः सह ।
शिष्याणां कन्यकायोनिं वधूयोनिं विंशेषतः ।।३१।।
केवलं गन्धपुष्पेण पूजयेद् भक्तिभावतः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा देवीलोके महीयते ।।३२।।

साधक को सदा ही कुंतलाकर्षण द्वारा योनि (शक्ति) का लालन-प करना चाहिए। महायोनि की गोद का आश्रय लेकर यदि साधक तांडव-नृत संलग्न हो जाय तो वह अपने साथ ही अपने करोड़ों कुल का भी पाप करके मोक्ष का भागी बन जाता है। विशेषतया अपनी शिष्या, कन्या या पु की योनि का श्रद्धापूर्वक गन्ध- पुष्पादिकों द्वारा पूजन करना चाहिए। ऐसा से साधक इस लोक में समस्त सुखों का उपभोग करके अन्त में देवीधा लिए प्रस्थान करता है।।३०-३२।।

अभावे गन्धपुष्पाभ्यां कारणेनापि पूजयेत् ।
पूजाकाले च देवेशि यदि कोऽप्यत्रागच्छेति ।।३३।।
दर्शयेद्वैष्णवीं पूजां विष्णोर्न्यासं तथा स्तवम् ।।३४।।

इति योनितन्त्रे सप्तमोऽध्यायः सम्पूर्णम्।

पूजनकाल में यदि गन्ध- पुष्पादिकों की उपलब्धता न हो तो वे कारण (मदिरा) द्वारा ही पूजन कर लेना उचित माना जाता है। हे देवेशि! पूजनस्थल पर पूजा काल में कोई अन्य व्यक्ति अचानक आ जाय तो उस के परिहारार्थ साधक को विष्णुस्तवन एवं विष्णुन्यास आदि कर्म पूरे चाहिए।।३३-३४।।

इस प्रकार योनितन्त्र के सप्तम अध्याय की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठ हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अष्टम अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

उर्वश्याद्याश्च या नार्यः त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
वीरसाधनकाले च तासां नाथस्त्त कौलिकः ।।१।।
मैथुनेन विना मुक्तिर्नेति शास्त्रस्य निर्णयः ।
श्रुति-स्मृति-पुराणानि कृतानि विविधं मया ।।२।।
पशूनां बुद्धिनाशाय शृणुष्व प्राणवल्लभे ।
परमानन्दरूपेण भजेत् योनिं सकुन्तलाम् ।।३।।
विशेषतः कलियुगे योनिरूपां जगन्मयीम् ।
यो जपेत् परया भक्त्या तस्य मुक्तिः करे स्थिता ।।४।।

शिवजी ने कहा– हे देवि! वीरसाधन के समय कौलिक उपासक को उर्वशी आदि स्वर्गनारियों का भी समावेश करना चाहिए ।

हे प्राणवल्लभे! सुनो । मैथुन कर्म के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती । सभी शास्त्रों का यही अभिमत है। पशुसाधकों के बुद्धिविनाश के हेतु ही मैंने श्रुति-स्मुति, पुराणादि जैसे ग्रन्थों का प्रतिपादन किया है। परमानन्दस्वरूपा शकुंतला योनि (शक्ति) का सर्वदा भजन करना चाहिए। जो व्यक्ति विशेषतया इस कलिकाल में योनिरूपा भगवती आद्याशक्ति का स्मरण तथा भजन करता रहता है उसकी मुक्ति उसकी मुट्ठी में निहित रहती है।।१-४।।

साधकानां सहस्राणि उपास्यानाञ्च कोटिशः ।
तेषां भाग्यवशेनापि कालीसाधन तत्परः ।।५।।
काली च जगतां माता सर्वशास्त्र-विनिश्चिता ।
कालिका-स्मृतिमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।६।।

सहस्रों साधकों तथा करोड़ों उपासकों में से कभी-कदा कोई एक भाग्यवान काली साधन में उद्यत होता है। देवी काली ही जगन्माता है । समस्त शास्त्रों का यही सुनिश्चित मत है। काली का केवल स्मरण करने मात्र से ही स्मरणकर्ता को मोक्ष मिल जाता है। यह बात अटल सत्य है।।५-६।।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव सुनिश्चितम् ।
जप्त्वा महामनुं काल्याः कालीपुत्रो न संशयः ।।७।
सा एव त्रिपुरा काली षोडशी भुवनेश्वरी ।
छिन्ना तारा महालक्ष्मी मातङ्गी कमलात्मिका ।।८।

कालीमन्त्र का जाप करने से जपकर्ता कालीपुत्र के सदृश हो जात यह बारम्बार सत्य और सुनिश्चित निर्णय है। जो काली हैं वही त्रिपुरा, षोड भुवनेश्वरी, तारा, छिन्नमस्ता तथा महालक्ष्मी भी हैं ।।७-८।।

सुन्दरी भैरवी विद्या प्रकारान्यापि विद्यते ।
दक्षिणा तारिणी सिद्धि नैंव चीनक्रमं विना ।।९।।
यस्मिन् मन्त्रे यदाचारः स एव परमो मतः ।
फलहानिस्त्वविश्वासात् तस्माद् भावपरो भवेत् ।।१०।।

ये ही देवियाँ सुन्दरी, भैरवी आदि महाविद्या के रूपों में प्रकटित चीनाचार क्रमानुसार विधि के विपरीत दक्षिण कालिका, तारा आदि भी सिद्धि नहीं हो सकतीं।

जिस मन्त्र के लिए जो स्वरूप आचारानुसार वर्णित है वही मन्त्र स की सर्वोत्तम विधि मानी गयी है। जो व्यक्ति इस सिद्धान्त में अविश्वासी होत उसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती । अत: सिद्धिलाभ के निमित्त साधक भक्तिभाव-परायण होना आवश्यक है ।।९-१०।।

यदत्र लिखितं देवि तन्त्रे च योनिसंज्ञके ।
तत्सर्वं साधकानाञ्च कर्त्तव्यं भावमिच्छता ।।११।।
जिह्वा योनिमुखं योनिः योनिः श्रोत्रे च चक्षुषि ।
सर्वत्रापि महेशानि योनिचक्रं विभावयेत् ।।१२।।

हे देवि! इस योनितन्त्र के अन्तर्गत जो कुछ भी लिखा गया सिद्धिकामी साधक को उसका निश्चय ही अनुपालन करना चाहिए। हे पार्व साधक को अपने अन्त:करण, वाणी, चक्षुरीन्द्रिय, रसनेन्द्रिय तथा कर्णों आदि सभी के द्वारा योनि का ध्यान करना चाहिए।।११-१२।।

योनिं विना महेशानि सर्वपूजा वृथा भवेत्।
तथा मन्त्राः न सिद्ध्यन्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।१३।।
सर्वां पूजां परित्यज्य योनिपूजां समाचरेत्।
गुरुं विना महेशानि मदभक्तो नापि सिद्ध्यते ।।१४।।

ॐ योनिपीठाय नमः ।।

इति योनितन्त्रे अष्टमोऽध्यायः सम्पूर्णम् ।

हे महेशानि! योनिपूजा के अभाव में अन्य सभी पूजाएँ निष्प्रभावी होती हैं। यह बात मैं निश्चित रूप से सत्य कहता हूँ। योनिपूजन के बिना मन्त्र की सिद्धि नहीं मिलती। अतः अन्य प्रकार की सभी पूजाओं को छोड़कर केवल योनिपूजा करना ही प्रशस्त माना गया है। इस साधना हेतु मेरा भक्त भी गुरुदीक्षा के बिना सिद्धि पाने में समर्थ नहीं हो सकता ।।१३-१४।।

इस प्रकार योनितन्त्र के अष्टम अध्याय की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

योनिध्यानम्

अतिसुललितगात्रां हास्यवक्त्रां त्रिनेत्रां ,
जितजलदसुकान्तिं पट्टवस्त्रप्रकाशाम् ।
अभयवरकराढ्यां रत्नभूषातिभव्यां,
सुरतरुतलपीठे रत्नसिंहासनस्थाम् ।।१।।
हरिहरविधिवन्द्यां बुद्धिशुद्धिस्वरूपां,
मदनरससमाक्तां कामिनीं कामदात्रीम् ।
निखिलजनविलासोद्दामरूपां भवानीं,
कलिकलुषनिहन्त्रीं योनिरूपां भजामि ।।२।।

आप अत्यनत मनोहर शरीरवाली, हास्यमुखी, त्रिनयना, पद्मकांतिविजित रेशमी वस्त्रों द्वारा शोभायमान हैं। आप अपने हाथों में अभय मुद्रा धारण कि हुए रत्नाभरणों से सज्जित है। आप कल्पतरु के नीचे रत्नपूरित सिंहासन प विराजमान हैं। आप शुद्ध बुद्धिस्वरूपिणी ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा भी वन्दनीय है आप समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। सभी जनों के विलास हेतु आ उद्दामस्वरूपा हैं। आप कलिकाल के सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाली है ऐसी योनिरूपा भवानी का मैं भजन करता हूँ ।।१-२।।

इति योनिं ध्यात्वा सम्पूज्य योन्युपरि हसौः इति योनिमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा जपं समर्प्य स्तवकवचादिकं पठेत् ।

अर्थात् योनि का ध्यान एवं पूजन कर योनि के ऊपर (शक्तिपीठ पर 'हसौः' नामस्वंज्ञक योनिमन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे। जप समाप्त क देवी को जप का समर्पण करने के पश्चात् स्तोत्र, कवचादि का पाठ उपासक क करना चाहिए।

योनिस्तोत्रम् (१)

श्रीदेव्युवाच

भगवान्न सर्वधर्मज्ञ कुलशास्त्रार्थपारग ।
सर्वं मे कथितं नाथ न त्वेकं परमेश्वर ।।१।।
श्रीयोनेः स्तवराजं हि तथा कवचमुत्तमम् ।
श्रोतुमिच्छामि सर्वज्ञ यदि तेऽस्ति कृपा मयि ।।२।।
सारभूतं महादेव निगमान्तर्गतं हर ।
यदि न कथ्यते देव प्राणत्यागं करोम्यहम् ।।३।।
दिवानिशि महाभाग ममाश्रुः पतितं भवेत् ।
अतस्तद् देवदेवेश कथ्यतां मे दयानिधे ।।४।।

देवी पार्वती ने शिवशंकर से कहा– हे भगवन् ! आप सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता, सभी शास्त्रों के पारंगत हैं। अतः आप उन सभी तत्त्वों को मुझसे बतलाने की कृपा करें। आप के अतिरिक्त कोई अन्य परमेश्वर नहीं है। यदि आप की मेरे ऊपर कृपा है तो मैं योनिस्तोत्र तथा योनिकवच सुनने के लिए उत्सुक हूँ। आप उसे कथन करें।

हे महादेव! निगमागम ग्रन्थों में जो सारभूत तत्त्व हो उसे वर्णन करें। यदि आप इसका कथन मुझसे नहीं करेंगे तो मैं अपने प्राण त्याग कर दूँगी। हे महाभाग! मेरे नेत्रों से अहर्निश अश्रु प्रवाहित होते रहते हैं। अतः हे दयानिधे! आप उन सब विषयों का मुझसे कथन करें।।१-४।।

श्रीमहादेव उवाच

शृणु पार्वति वक्ष्यामि देहत्यागं कथं कुरु ।
अत्यन्तगोपनीयं हि निगमे कथितं पुरा ।।१।।
ब्रह्मविष्णुग्रहादीनां न मया कथितं पुरा
अकथ्यं परमेशानि इदानीं किं करोमि ते ।।२।।

तव स्नेहेन बद्धोऽहं कथयामि तव प्रिये ।
मातर्द्देवि महाभागे यदि कस्मै प्रकाश्यते ।
शपथं कुरु मे दुर्गे यदि त्वं मत्प्रिया स्मृता ।।३।।
ब्रह्मा यदि चतुर्व्वक्त्रैः पञ्चवक्त्रैः सदाशिवः ।
वर्णितुं स्तवराजञ्च न शक्नोति कदाचन ।
सम्यग् वक्तुं न शक्नोमि संक्षेपात् कथयामि ते।।४।।

हे पार्वति ! तुम देहत्याग किस लिए करना चाहती हो। सभी शास्त्रों यह विषय अति गोपनीय है। पूर्वकाल में ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं ने कभी कुछ नहीं कहा है। हे परमेश्वरि! यह तत्त्व अकथनीय है तो फिर मैं कि प्रकार कह सकता हूँ।

हे प्रिये! मै तुम्हारे स्नेहपाश में आबद्ध हूँ इसलिए मैं तुमसे कहता परन्तु हे दुर्गे! तुम इस बात का शपथ लो कि तुम इस विषय को किसी समक्ष प्रकाशित नहीं करोगी। इस स्तवराज का वर्णन करने में चतुर्मुख ब्र तथा पंचमुख स्वयं मैं भी सर्वथा असमर्थ हूँ। सम्यक् रूप से इसका कथन मैं नहीं कर सकता किन्तु संक्षेप में मैं इसका वर्णन कर रहा हूँ।।१-४।।

विनियोगः—साधक को अपने दाहिने हाथ में जल लेकर निम्न म पढ़कर भूमिपर जल को छोड़ देना चाहिए।

अस्य श्रीयोनिस्तवराजस्य कुलाचार्य-ऋषिः कौलिकच्छन्दः।
श्रीयोनिरूपा दशविद्यात्मिका देवता सर्वसाधने विनियोगः ।।

अर्थात् इस योनिस्तवराज के कुलाचार्य ऋषि, कौलिक छन्द, श्रीयोनिरू दशविद्यात्मिका देवता हैं। मैं सर्वसिद्धि के निमित्त यह विनियोग कर रहा हूँ

विनियोग के पश्चात् साधक को निम्न स्तोत्र का पाठ करना चाहिए।

ॐ योनिरूपे महामाये सर्व्वसम्पतप्रदे शुभे ।
कृपया सिद्धिं मे देहि देवि! जगन्मयि ।।१।।
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते ।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि! ।।२।।

हे देवि! आप योनिरूपा, महामाया तथा सर्वसम्पत्तिदायिनी हैं। आप ापूर्वक मुझे समस्त सिद्धियाँ प्रदान करे। आप सर्वस्वरूपिणी, सर्वेश्वरी तथा पूर्ण शक्तियों से युक्त हैं। हे जगन्माते! आप मुझे कृपया सभी सिद्धियाँ दें ॥१-२॥

महाघोरे महाकालि! कुलाचारिप्रये सदा ।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि! जगन्मयि! ।।३।।
घोरदंष्ट्रे चोग्रतारे सर्वशत्रुविनाशिनि! ।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि ।।४।।

हे जगन्माते ! आप महाभयंकर कालिका रूप हैं । आपको कौलिक ाधक सदा ही प्रिय है । अतः आप मुझे सर्वाभीष्ट सिद्धियों को प्रदान करें। आप दन्तावली अत्यन्त तीक्ष्ण है तथा आप समस्त शत्रुओं की विनाशिका है। ाप मुझे कृपापूर्वक सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करें ॥३-४॥

योनिरूपा महाविद्ये सर्वदा मोक्षदायिनी ।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि ।।५।।
जगद्धात्रि महाविद्ये जगदुद्धारकारिणि ।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि ।।६।।

हे देवि ! आप योनिरूपा महाविद्या हैं, आप सदैव ही अपने भक्तों को क्षलाभ कराती हैं। अतः आप मुझे भी सिद्धि प्रदान करने की कृपा करे। आप जगत् को धारण करने वाली, जगत् की उद्धारिका महाविद्यास्वरूपा हैं। तएव आप मुझे सम्पूर्ण रूप से सिद्धियों को देने की कृपा करें ॥५-६॥

जगद्धात्रि महामाये योनिरूपे सनातनि ।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि ।।७।।
जय देवि जगन्मातः सृष्टि-स्थित्यन्तकारिणी ।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि ।।८।।

हे देवि! आप शाश्वतस्वरूपिणी, योनिरूपा, जगद्धात्री एवं महामाया हैं। तः आप मुझे सिद्धियाँ प्रदान करें। हे जगन्माते! आपकी जय हो । आप ही सृष्टि की उत्पादिका, पालिका तथा संहारिका है। आप मुझे कृपा करके मस्त सिद्धियाँ दें।।७-८।।

सिद्धिदात्रि महामाये सर्वसिद्धिप्रदायिनि ।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि ।।९।।
महालक्ष्मि महादेवि महामोक्षप्रदायिनि ।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि ।।१०

हे देवि! आप ही सिद्धिदात्री, महामाया तथा समस्त सिद्धिप्रदायिक हे जगन्माते! आप मुझे सिद्धि दें। आप ही महालक्ष्मी, महादेवी एवं महामोक्ष हैं। इसलिए आप मुझे सम्पूर्ण सिद्धियों को देकर मुझ पर अपनी कृपा करें॥९-१

गौरी लक्ष्मीश्च मातङ्गी दुर्गा च नवचण्डिका ।
बगलामुखी भुवनेशी भैरवी च तथा प्रिये ।
छिन्नमस्ता च काली च योनिरूपा सनातनी ।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि ।।११
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
नायिका विप्रचित्ताद्या अन्या या नायिका स्मृताः ।
वसनित योनिमाश्रित्य ताभ्योऽपीह नमो नमः ।।१२

हे देवि! आप ही गौरी, लक्ष्मी, मातंगी, दुर्गा तथा नवचण्डी हैं। ही बगलामुखी, भैरवी तथा भुवनेश्वरी भी हैं। आप शाश्वतस्वरूपिणी योनि काली तथा छिन्नमस्ता के नाम से भी जगत् में विख्यात हैं। अतः आप सम्पूर्ण सिद्धियाँ देने की कृपा करें। आप ही काली, कपालिनी, कुल्ला कुरुकुल्ला हैं। आप आद्या विप्रचित्ता नायिका हैं । आपका निवास योनि के में हैं। अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥११-१२॥

अणिमाद्यष्टसिद्धिश्च वसत्यस्याः समीपतः ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु योगमोक्ष-प्रदायिनि ।।१३
सर्वशक्तिमये देवि सर्वकल्मषनाशिनि ।
हे योने हर विघ्नं मे सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।१४

आपके निकट अष्टसिद्धियाँ (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्र प्राकाम्य, ईशित्व एवं वशित्व) वास करती है। आप ही योग तथा मोक्ष की वाली हैं। अतः मैं आप को नमस्कार करता हूँ। हे देवि! आप सर्वशक्तिस

सभी पापों की विनाशकर्त्री भी हैं। अतएव हे योने! मेरे सम्पूर्ण विघ्नों का निवारण कर मुझे सभी सिद्धियाँ देने की कृपा करें॥१३-१४॥

आधारभूते सर्व्वेषां पूजकानां प्रियम्वदे ।
स्वर्गपाताल वासिन्यै योनये च नमो नमः ।।१५।।
विष्णुसिद्धिप्रदे देवि शिवसिद्धि प्रदायिनी ।
ब्रह्मसिद्धिप्रदे देवि रामचन्द्रस्य सिद्धिये ।
शक्रादीनाञ्च सर्वेषां सिद्धिदायै नमो नमः ।।१६।।

हे देवि! आप सम्पूर्ण सृष्टि की एकमात्र आधारभूता हैं, उपासक के लिए अत्यन्त प्रिय हैं। आपका वास स्वर्ग-पातालादि आदि सभी स्थानों में है। अतः हे योने! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। विष्णु एवं शिव को भी आपने सिद्धि प्रदान की है, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा तथा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को भी आपने सिद्धि दी है। इन्द्रादि सभी देवगणों की भी आप ही सिद्धिदात्री हैं। अतः मैं आपको नमन करता हूँ॥१५-१६॥

फलश्रुतिः

इति ते कथितं देवि सर्वसिद्धि प्रदायकम् ।
स्तोत्रं योनेर्महेशानि प्रकाशयामि ते प्रिये ।।
सर्वसिद्धिप्रदं स्तोत्रं यः पठेत् कौलिकः प्रिये ।
लिखित्वा पुस्तके देवि रक्तद्रव्यैश्च सुन्दरि ।।
तस्यासाध्यानि कर्म्माणि वश्यादीनि कुलेश्वरि ।
नास्ति नास्ति पुनर्नास्ति नास्त्येव भुवनत्रये ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय गाणपत्यं लभेन्नरः ।
रात्रौ कान्तासमायोगे यः पठेत् साधकोत्तमः ।
स्तवेनानेन संस्तुत्य साधकः किं न साधयेत् ।
सालङ्कृतां स्वकान्ताञ्च लीलाहावविभूषिताम् ।
रक्तवस्त्र-परीधानां कृत्वा सम्पूज्य साधकः ।
भोजयित्वा ततो देवि स्वयं भुञ्जीत तत्परः ।
मत्स्यमांसादिकान् भुक्त्वा क्रोड़े कृत्वा स्वयोषितम्।

रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सा दुर्गा स सदाशिवः ।
भवत्येव न सन्देहो मम वक्त्राद्विनिर्गतम् ।।
येन दत्तं मयि स्तोत्रं स एव मद् गुरुः स्मृतेः ।
तस्यैव यदि भक्तिः स्यात् स भवेज्जगदीश्वरः ।।
नमोऽस्तु स्तवराजाय नमः स्तवप्रकाशिने ।
यत्रास्ते स्तवराजोऽयं तत्रास्ते श्रीसदाशिवः ।।

इति शक्तिकागमसर्वस्वे हरपार्वतीसंवादे
श्रीयोनिस्तवराजः समाप्तः ।

हे देवि! यह सर्वसिद्धिप्रद स्तोत्र मैं तुम्हारे स्नेह के कारण प्रकाशित रहा हूँ। इस सर्वसिद्धिदायक स्तोत्र का जो कौलिक (कुलाचारी साधक) करता या रक्तवर्णीय पदार्थों (रक्तचन्दनादि) से पुस्तक के रूप में लेखन क हैं उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस स्तोत्र के समान इस त्रैलोक्य में भी नहीं है। जो प्राणी प्रात:काल इस स्तोत्र का नित्य पाठ करता है गणपतित्व को प्राप्त करता है।

जो साधक रात्रिकाल में रमणी सहवास के समय यह पाठ करता है सर्वोत्तम साधक कहलाता है।वह ऐसी साधना करके कौन-सी वस्तु प्राप्त कर सकता? स्वपत्नी को अलंकारों से विभूषित कर स्वयं लाल वस्त्र धारण पूजन के पश्चात् भोज्य पदार्थ अर्पित कर स्वयं भी भोजन करे। मद्य-मांस पदार्थों का भक्षण कर अपनी पत्नी की गोद का आश्रय ले।

जो उपासक रात्रि के समय स्तोत्र मन्त्र का जाप करता है वह महादेव समान हो जाता है। मेरे मुख से निर्गत ये वाक्य कभी असत्य नहीं हो सक ऐसे स्तवराज को मैं नमस्कार करता हूँ। जिस स्थान में यह योनिस्तव विद्यमान रहता है उस स्थान में सर्वदा ही शिव का निवास रहता है।

इति शक्तिकागमसर्वस्वे हरगौरीसंवादे श्रीयोनिस्तवराजः सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार योनिस्तवराज की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्या समाप्त हुई ।

योनिस्तोत्रम् (२)

शृणु देवि सुर-श्रेष्ठे सुरासुर- नमस्कृते ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि स्तोत्रं हि सर्वदुर्लभम् ।
यस्याव वोधनाद्देहे देही ब्रह्ममयो भवेत् ।।१।।

हे देवि! देव-दानवों से नमस्कृत इस दुर्लभ स्तोत्र का तुम श्रवण करो। की अवधारणा करने से जीव ब्रह्ममय हो जाता है।।१।।

श्रीपार्वत्युवाच

शृणु देव सुरश्रेष्ठ सर्व-बीजस्य सम्मतम् ।
न वक्तव्यं कदाचित्तु पाषण्डे नास्तिके नरे ।।२।।
ममैव प्राण-सर्वस्वं लतास्तोत्रं दिगम्बर ।
अस्य प्रपठनाद्देव जीवन्मुक्तोऽपि जायते ।।३।।

पार्वती जी बोली- हे देव! यह सभी बीजों का सारसम्मत है। इसे खण्डियों एवं नास्तिकों से कभी नहीं कहना चाहिए। यह मेरे प्राणों का सर्वस्व इसके पाठ करने से प्राणी जीवन्मुक्त (आवागमन से रहित) हो जाता है।।२-३।।

ॐ भग-रूपा जगन्माता सृष्टि-स्थिति-लयान्विता ।
दशविद्या-स्वरूपात्मा योनिर्मां पातु सर्वदा ।।४।।
कोण-त्रय-युता देवि स्तुति-निन्दा-विवर्जिता ।
जगदानन्द-सम्भूता योनिर्मां पातु सर्वदा ।।५।।

इस सृष्टि की उत्पादिका, स्थापिका तथा प्रलयांतिका जगन्माता भगस्वरूपिणी यह योनि ही दशविद्यास्वरूपा है। अत: यह योनि सर्वदा ही मेरी रक्षा करे। देवि! यह त्रिकोणात्मिका योनि प्रशंसा तथा निन्दा से रहित है। जगत के मस्त आनन्दों का मूलभूत कारण इस योनि से सदा ही मेरा रक्षण होता : ।।४-५।।

रक्त-रूपा जगन्माता योनिमध्ये सदा स्थिता ।
ब्रह्म-विष्णु-शिव-प्राणा योनिर्मां पातु सर्वदा ।।६।।

कार्त्रिकी-कुन्तलं रूपं योन्युपरि सुशोभितम् ।
भुक्ति-मुक्ति-प्रदा योनिः योनिर्मां पातु सर्वदा ।।७।।

योनि के मध्यभाग में जगज्जननी रक्तरूप में सदैव अवस्थित रहती ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की प्राणस्वरूपा योनि से सदा ही मेरी रक्षा हो। जि योनि के ऊपर कुन्तलरूप में कार्तिकी विराजमान है, जो योनि भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी है वह सर्वदा ही मेरा रक्षण करे ।।६-७।।

वीर्यरूपा शैलपुत्री मध्यस्थाने विराजिता ।
ब्रह्म-विष्णु-शिव श्रेष्ठा योनिर्मां पातु सर्वदा ।।८।।
योनिमध्ये महाकाली छिद्ररूपा सुशोभना ।
सुखदा मदनागारा योनिर्मां पातु सर्वदा ।।९।।

मध्य भाग में वीर्यरूपिणी शैलपुत्री देवी सुशोभित हैं और जो ब्रह विष्णु तथा शिव का प्राणाधार हैं, वह योनि सदैव ही मेरी रक्षा करती रहे। यो के मध्य स्थान में छिद्ररूपिणी महाकाली का निवास है जो मदनगृह सुखदायिनी हैं। ऐसी योनि के द्वारा मेरा सदैव रक्षण होता रहे ।।८-९।।

काल्यादि-योगिनी देवी योनिकोणेषु संस्थिता ।
मनोहरा दुःख लभ्या योनिर्मां पातु सर्वदा ।।१०।।
सदाशिवो मेरु-रूपो योनिमध्ये वसेत् सदा ।
कैवल्यदा काममुक्ता योनिर्मां पातु सर्वदा ।।११।।

योनिकोण में काली, योगिनी आदि देवियों का वास है,ऐसी दुःखहारि योनि से सदा ही मेरी रक्षा हो। योनि के मध्य भाग में शिवजी सदैव ही मेरु-रू में अवस्थित रहते हैं। ऐसी काममुक्ता कैवल्यपददायिनी योनि के द्वारा मेरा सर्व रक्षण होता रहे।।१०-११।।

सर्व-देव स्तुता योनिः सर्व-देव-प्रपूजिता ।
सर्व-प्रसवकर्त्रीं त्वं योनिर्मां पातु सर्वदा।।१२।।
सर्व-तीर्थ-मयी योनिः सर्व-पाप-प्रणाशिनी ।
सर्वगेहे स्थिता योनिः योनिर्मां पातु सर्वदा ।।१३।।

जो योनि समस्त देवों से स्तुत्य, पूजित तथा सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पन्नकर्त्री उससे मेरी रक्षा होती रहे। ऐसी योनि जो सम्पूर्ण तीर्थस्थानस्वरूपा, समस्त पों की नाशिनी तथा सम्पूर्ण प्राणियों में अवस्थित है, उसके द्वारा मेरा सदा रक्षण हो॥१२-१३॥

मुक्तिदा धनदा देवी सुखदा कीर्तिदा तथा ।
आरोगयदा वीर-रता पञ्च-तत्त्व-युता सदा ॥१४॥
योनिस्तोत्रमिदं प्रोक्तं यः पठेत् योनि-सन्निधौ ।
शक्तिरूपा महादेवी तस्य गेहे सदा स्थिता ॥१५॥

वह योनि (शक्ति) मोक्षदायिनी, धनदायिनी, सुखदायिनी, कीर्तिदायिनी था अरोग्यदायिनी रूप में सर्वदा ही पंचतत्त्वों से युक्त रहती है। जो प्राणी ोनिपीठ के समक्ष इस योनिस्तोत्र का पाठ करता है उसके गृह में सदैव ही ाक्तिस्वरूपा महादेवी का निवास बना रहता है॥१४-१५॥

तीर्थ पर्यटनं नास्ति नास्ति पूजादि- तर्पणम् ।
पुरश्चरणं नास्त्येव तस्य मुक्तिरखण्डिता ॥१६॥
केवलं मैथुनेनैव शिव-तुल्यो न संशयः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं मम वाक्यं वृथा नहि ॥१७॥

तीर्थाटन, तर्पण, पुरश्चरणादि किये बिना केवल योनिपूजन से ही उपासक गोक्ष का अधिकारी बनता है। केवल मैथुन के द्वारा ही वह शिव-सदृश हो जाता है। यह बात नितान्त ही सत्य है । मेरा कहा हुआ यह वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता॥१६-१७॥

यदि मिथ्या मया प्रोक्ता तव हत्या-सुपातकी ।
कृताञ्जलि-पुटो भूत्वा पठेत् स्तोत्रं दिगम्बर ! ॥१८॥
सर्वतीर्थेषु यत् पुण्यं लभते च स साधकः ।
काल्यादि-दश विद्याश्च गङ्गादि-तीर्थ-कोटयः ।
योनि-दर्शन-मात्रेण सर्वाः साक्षान्न संशय ॥१९॥

यदि मेरी वाणी असत्य हो जाय तो वह तुम्हारी हत्या के समान कृतांजलि प्रदान करके दिगम्बर अवस्था में स्तोत्रपाठ करना उचित है। स तीर्थदर्शन, गंगास्नान, काली आदि दश महाविद्याओं का पूजन आदि करके फल साधक प्राप्त करता है वह केवल योनिदर्शन मात्र से ही पा लेता है। इ किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए।।१८-१९।।

कुल-सम्भव-पूजायामादौ चान्ते पठेदिदम् ।
अन्यथा पूजनाद्देव रमणं मरणं भवेत् ।।२०।।
एकसन्ध्यां त्रिसंध्यां वा पठेत् स्तोत्रमनन्यधीः ।
निशायां सम्मुखे-शक्त्याः स शिवो नात्र संशयः ।।२१।।

इति निगमकल्पद्रुमे योनिस्तोत्रं समाप्तम् ।

सर्वप्रथम कुलाचारानुसार पूजन के पश्चात् साधक को पाठ करना चाहि अन्यथा रमण करने से निश्चय ही मृत्यु होती है। जो बुद्धिमान साधक एक अथवा त्रिकाल पाठ करके अपनी सामर्थ्यानुसार रात्रि में भी पाठ करता है शिव के समान हो जाता है। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।।२०-२१

इस प्रकार निगमकल्पद्रुम तन्त्रांतर्गत योनिस्तोत्र की पं० हरिहरप्रस त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

योनिकवचम्

देव्युवाचा

भगवन् श्रोतुमिच्छामि कवचं परमाद्भुतम् ।
इदानीं देवदेवेश कवचं सर्वसिद्धिदम् ।।१।।

पार्वति जी ने कहा– हे भगवन् ! सर्वसिद्धिप्रदायक योनिकवच को मैं आपसे सुनना चाहती हूँ। अतः आप मुझसे इसका कथन करें।

महादेव उवाच

शृणु पार्वति! वक्ष्यामि अतिगुह्यतमं प्रिये ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं दातव्यं निष्फलं भवेत् ।।१।।

शिव जी ने कहा– हे देवी पार्वति! मैं तुमसे इस अत्यन्त गुह्यतम योनिकवच का वर्णन करता हूँ। इसे हर किसी व्यक्ति से नहीं बतलाना चाहिए। जो ऐसा करता है उसके सभी कर्म व्यर्थ हो जाते हैं ।

कवचपाठ से पूर्व साधक को हाथ में जल लेकर निम्नलिखित मन्त्र को बोलते हुए हाथ का जल भूमि पर छोड़ देना चाहिए ।

विनियोगः

अस्य श्रीयोनिकवचस्य गुप्तऋषिः कुलटाच्छन्दा राजविघ्नोत्पातविनाशे विनियोगः।

अर्थात् इस योनिकवच के गुप्त ऋषि, कुलटा छन्द तथा राजविघ्नोत्पात विनाशार्थ मैं यह विनियोग कर रहा हूँ ।

ह्रीं योनिर्म्मे सदा पातु स्वाहा विघ्नविनाशिनी ।
शत्रुनाशात्मिका योनिः सदा मां रक्ष सागरे ।।१।।
ब्रह्मात्मिका महायोनिः सर्वान् प्ररक्षतु ।
राजद्वारे महाघोरे क्रीं योनिः सर्वदाऽवतु ।।२।।

विघ्ननाशिनी 'स्वाहा' तथा 'ह्रीं' योनि सर्वदा ही मेरी रक्षा करे। शत्रुनाशरूपा योनि से भवसागर में मेरी रक्षा हो । ब्रह्मात्मिकारूपिणी महायोनि से सर्वविध

रक्षण हो। राजदरबार में 'क्रीं' योनि सदा ही मेरी रक्षा करे ॥१-२॥

हुमात्मिका सदा देवी योनिरूपा जगन्मयी ।
सर्वाङ्गं रक्ष मां नित्यं सभायां राजवेश्मनि ।।३।।
वेदात्मिका सदा योनिर्वेदरूपा सरस्वती ।
कीर्त्तिं श्रीं कान्तिमारोग्यं पुत्रपौत्रादिकं तथा ।।४।।

योनिस्वरूपिणी 'हुम् ' अक्षरात्मिका योनि के द्वारा मेरे सर्वांग की त– राजद्वार में मेरी रक्षा हो। वेदात्मिका योनि जो सरस्वतीरूपा है उसके द्वारा मे– कीर्ति, कांति, आरोग्य एवं पुत्र-पौत्रादिकों का रक्षण सदैव होता रहे ॥३-४।

रक्ष रक्ष महायोने सर्वासिद्धिप्रदायिनी ।
राजयोगात्मिका योनिः सर्वत्र मां सदाऽवतु ।।५।।
इति ते कथितं देवि कवचं सर्वसिद्धिदम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं राजोपद्रवनाशकृत् ।।६।।

सर्वसिद्धिदात्री महायोनि से मेरी रक्षा हो, राजयोगकारक योनि से सभी स्थानों में सर्वदा ही मेरा रक्षण होता रहे । हे देवि! समस्त सिद्धियों को देने वाले इस कवच का वर्णन मैंने तुमसे किया है। जो साधक इस कवच का पाठ तीनों संध्याओं में करता है उसके राजा द्वारा उत्पन्न सभी उपद्रवों का शमन हो जाता है॥५-६॥

सभायां वाकपतिश्चैव राजवेश्मनि राजवत् ।
सर्वत्र जयमाप्नोति कवचस्य जपेन हि ।।७।।
श्रीयोन्याः सङ्गमे देवीं पठेदेनमनन्यधीः ।
स एव सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ।।८।।

इस कवच का पाठक संगोष्ठी में वक्ता तथा राजगृह में राजा के तुल्य आदरणीय होता है। इसका पाठकर्ता सर्वत्र विजयी होता है। श्रीयोनि संगम में पाठ करने वाला बुद्धिमान साधक सभी सिद्धियों को प्राप्त करता है । इसमें किसी प्रकार के सोच-विचार की आवश्यकता नहीं हैं॥७-८॥

मातृकाक्षरसम्पुटं कृत्वा यदि पठेन्नरः ।
भुङ्क्ते च विपुलान् भोगान् दुर्गया सह मोदते ।।९।।
इति गुह्यतमं देवि सर्वधर्म्मोत्तमोत्तमम् ।
भूर्जे वा ताड़पत्रे वा लिखित्वा धारयेद् यदि ।।१०।।
हरिचन्दनमिश्रेण रोचना-कुङ्कुमेन च ।
शिखायामथवा कण्ठे सोऽपीश्वरो न संशयः ।।११।।

यदि कोई साधक कवच के साथ मातृकाक्षर सम्मिलित कर पाठ करता तो वह अनेक सांसारिक सुखों का उपभोग करता है। हे देवि! सभी धर्मों में त्तम यह गुप्ततम कवच मैंने तुमसे कहा। इस कवच को पीत चंदन तथा कुम से ताड़पत्र अथवा भोजपत्र पर लिखकर जो कोई कण्ठप्रदेश या शिखा धारण करता है वह निश्चय ही साक्षात् ईश्वरस्वरूप हो जाता है॥९-११॥

शरत् - काले महाष्टम्यां नवम्यां कुलसुन्दरि ।
पूजाकाले पठेदेनं जयी नित्यं न संशयः ।।१२।।

इति शक्तिकागमसर्वस्वे हरगौरीसंवादे
श्रीयोनिकवचं समाप्तम् ।

शरत्कालीन (आश्विन) महाष्टमी या महानवमी तिथि में जो उपासक न करने के पश्चात् पाठ करता है वह प्रत्येक क्षेत्र में विजयलाभ करता है। में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रखना चाहिए ॥१२॥

इस प्रकार श्रीयोनिकवच की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या ाप्त हुई ।

काली-कवचम्

भैरव्युवाच

कालीपूजा श्रुता नाथ! भावाश्च विविधा प्रभो ! ।
इदानीं श्रोतुच्छिामि कवचं पूर्वसूचितम् ।।१।।
त्वमेव स्रष्टा पाता च संहर्ता च त्वमेव च ।
त्वमेव शरणं नाथ! त्राहि मां दुःख संकटात् ।।२।।

भैरवी ने भैरव के प्रति उन्मुख होकर कहा – हे नाथ! मैंने आपके द्व कथित कालीपूजन का श्रवण किया। परन्तु आपने पहले काली-कवच सम्बन्ध में बतलाने की जो बात कही थी,उसे ही इस समय मैं सुनना चाह रही

हे नाथ! आप ही इस सृष्टि के उत्पन्नकर्ता, पालक तथा संहारक हैं। आपके शरणागत हुई हूँ। अतएव आप इस घोर दुःख के संकट से मेरा त्र करें॥१-२॥

भैरव उवाच

रहस्यं शृणु वक्ष्यामि भैरवि प्राणवल्लभे! ।
श्रीजगन्मङ्गलं नाम कवचं मन्त्र-विग्रहम् ।।३।।
पठित्वा धारयित्वा च त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षणात् ।
नारायणोऽपि यद् धृत्वा नारी भूत्वा महेश्वरम् ।।४।।
योगिनं क्षोभमनयद् यद् धृत्वा च रघूत्तमः ।
वरतृप्तो जघानैव रावणादि निशाचरान् ।।५।।

भैरव ने भैरवी से कहा– हे प्राणवल्लभे! मन्त्ररूप जगन्मङ्गल नाम कवच के भेद का मैं तुमसे कथन कर रहा हूँ। अतः तुम इसे स्थिरचित्त से सु इस कवच के पाठक या धारक तत्काल ही त्रैलौक्य को विमुग्ध कर लिया क है। भगवान् विष्णु ने भी इसे धारण कर नारी वेश से महेश्वर के मन को क्षुभि कर दिया था। इसी कवच के प्रभाव से भगवान श्रीराम ने अत्यन्त दुर्दान्त दा रावणादि का वध किया ॥३-५॥

यस्य प्रसादादीशोऽहं त्रैलोक्यविजयी विभुः ।
धनाधिपः कुबेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छचीपतिः ।।६।।

एवं सकला देवाः सर्वसिद्धीश्वराः प्रिये ।
श्रीजगन्मङ्गलस्याऽस्य कवचस्य ऋषि शिवः ।।९।।

इस कवच धारण के फलस्वरूप ही मैं जगदाधिपति एवं त्रिलोकविजेता बन सका हूँ। इसी कवच के प्रभाव से यक्षपति कुबेर धनाधिपति तथा देवराज इन्द्र ने शचीपति बनने का गौरव प्राप्त किया था।

हे प्रिये! समस्त देवताओं ने भी इसी कवच के बल पर सभी सिद्धियों को हस्तगत किया। इस कवच के ऋषि शिव हैं।।६-७।।

छन्दोऽनुष्टुब् देवता च कमलिका दक्षिणेरिता ।
जगतां मोहने दुष्टविजये भुक्ति-मुक्तिषु ।।८।।

इस कवच का छन्द अनुष्टुप् हैं तथा इसके देवता दक्षिण काली हैं। यह कवच त्रिलोकी का विमुग्धकारक, दुर्जनों पर विजय दिलाने वाला तथा भुक्ति-मुक्ति का दाता है।।८।।

योषिदाकर्षणे चैव विनियोगः प्रकीर्तितः ।
शिरो मे कालिका पातु क्रींकारैकाक्षरी परा ।।९।।
क्रीं क्रीं क्रीं मे ललाटं च कालिका खड्गधारिणी ।
हूं हूं पातु नेत्रयुगं ह्रीं ह्रीं पातु श्रुती मम ।।१०।।

मुख्यतया नारियों को आकर्षित करने हेतु इसका प्रयोग विशेष उपयुक्त माना जाता है। परा एकाक्षरी क्रींरूप कालिका देवी मेरे शिरोभाग का रक्षण करें। खड्गधारिणी क्रीं क्रीं क्रींरूपा कालिका मेरे भाल की, हूं हूं रूपा कालिका मेरे द्रय चक्षुओं की तथा ह्रीं ह्रींरूपा कालिका मेरे दोनों श्रवणेन्द्रियों की रक्षा करें।।९-१०।।

दक्षिणे कालिका पातु घ्राणयुग्मं महेश्वरी ।
क्रीं क्रीं क्रीं रसनां पातु हूं हूं पातु कपोलकम् ।।११।।
वदनं सकलं पातु ह्रीं ह्रीं स्वाहा-स्वरूपिणी ।
द्वाविंशत्यक्षरी स्कन्धौ महाविद्या सुखप्रदा ।।१२।।

दक्षिण पार्श्व की कालिका, दोनों नासिका-छिद्रों की महेश्वरी, क्रीं क्रीं क्रींरूपा काली मेरे रसना (जिह्वा) तथा हूं हूं स्वरूपिणी काली देवी मेरी दोनों गालों की रक्षा करें। ह्रीं ह्रीं स्वाहारूपा काली मेरे मुख भाग की, बाईस

अक्षरात्मिका सुखदायिनी महाविद्या स्वरूपा काली मेरे दोनों कंधों का रक्षण करें॥११-१२॥

खड्ग-मुण्डधरा काली सर्वाङ्गमभितोऽवतु।
क्रीं हूं ह्रीं त्र्यक्षरी पातु चामुण्डा हृदये मम ॥१३॥
ऐं हूंओ ऐं स्तनद्वन्द्वं ह्री ँफट् स्वाहा ककुत्स्थलम्।
अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकर्तृका ॥१४॥

खड्ग-मुंडधारिणी काली चारो ओर से मेरे सभी अंगों की रक्षा करें। 'क्रीं हूँ ह्रीं' इन तीन अक्षरों वाली चामुण्डास्वरूपिणी काली मेरे हत्प्रदेश का रक्षण करें। इसके अतिरिक्त 'ऐं हूँ ओं ऐं' रूप चतुरक्षरात्मिका काली मेरे दोनों उरोजों तथा 'ह्रीं फट् स्वाहा' रूप काली मेरे तालुभाग का रक्षण करती रहे। अष्टाक्षरी महाविद्या सकर्तृका रूपा कालिका मेरी दोनों भुजाओं की रक्षा करें॥१३-१४॥

क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रींकारी पातु षडक्षरी मम।
क्रीं नाभि मध्यदेशं च दक्षिणे कालिकाऽवतु ॥१५॥
क्रीं स्वाहा पातु पृष्ठं च कालिका सा दशाक्षरी।
क्रीं मे गुह्यं सदा पातु कालिकायै नमस्ततः ॥१६॥

'क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं' – ये षडक्षरीरूपा काली मेरा रक्षण करें। क्रींरूप काली नाभिस्थल एवं दक्षिण कालिका मेरे मध्य स्थान की रक्षा करें। 'क्रीं स्वाहा' दशाक्षरी रूप काली मेरे पीठ की तथा क्रीं रूप कालिका सदैव मेरे गुप्तांग का रक्षण करती रहे। इतना कर लेने के पश्चात् कालिका देवी को प्रणाम करना चाहिए॥१५-१६॥

सप्ताक्षरी महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूँ हूँ पातु कटिद्वयम् ॥१७॥
काली दशाक्षरी विद्या स्वाहा मामूरुयुग्मकम्।
ॐ क्रीं क्रीं मे स्वाहा पातु कालिका जानुनी सदा॥१८॥

सप्ताक्षरी महाविद्यास्वरूपा काली सम्पूर्ण मन्त्रों मे अत्यन्त गुप्त है। ह्रीं ह्रीं रूपिणी कालिका देवी मेरे दक्षिण ओर तथा हूँ हूँ रूपा काली मेरे वाम ओर कटि-प्रदेश का रक्षण करें। दशाक्षरी विद्या एवं स्वाहारूपिणी काली मेरे दोनों ऊरुओं की तथा क्रीं क्रीं में स्वाहारूपिणी कालिका मेरे घुटनों की रक्षा करती रहें ॥१७-१८॥

कालीहृन्नामविद्येयं चतुर्वर्गफलप्रदा ।
क्रीं ह्रीं ह्रीं पातु सा गुल्फं दक्षिणे कालिकाऽवतु ।।१९।।
क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा पदं पातु चतुर्दशाक्षरी मम ।
खड्ग-मुण्डधरा काली वरदाभयधारिणी ।।२०।।

हृद् नामधारिणी विद्यास्वरूपा काली चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) रूप फलदायिनी हैं। क्रीं क्रीं क्रीं रूपिणी दक्षिण कालिका मेरे दोनों गुल्फों (एड़ियों) की रक्षा करें। चतुर्दशाक्षरी क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा रूपा काली मेरे पाँवों का रक्षण करें तथा खड्ग-मुण्डधारिणी कालिका हाथों में वरद तथा अभय मुद्रा धारण करने वाली हैं।।१९-२०।।

विद्याभिः सकलाभिः सा सर्वाङ्गमभितोऽवतु।
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।।२१।।
विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्ता घनत्विषा ।
नीला घना बलाका च मात्रा मुद्रा मिता च माम् ।।२२।।

सम्पूर्ण कलाओं से परिपूर्ण, समग्र विद्यास्वरूपा काली मेरे समस्त अवयवों की चतुर्दिक रक्षण करें। काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, उग्रोग्रप्रभा, दीप्ता, घनत्विषा, नीला, घना, बलाका, मात्रा, मुद्रा तथा मिता आदि।।२१-२२।।

एताः सर्वाः खड्गधरा मुण्डमालाविभूषणाः ।
रक्षन्तु दिग् - विदिक्षु मां ब्राह्मी नारायणी तथा ।।२३।।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चाऽपराजिता ।
वाराही नारसिंही च सर्वाश्चाऽमितभूषणाः ।।२४।।
रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु विदिक्षु मां यथा तथा ।
इति ते कथितं दिव्यं कवचं परमाद्भुतम् ।।२५।।

सभी खड्गधारिणी मुंडमालविभूषिता हैं। ये सभी दिशाओं-विदिशाओं में मेरा सदैव रक्षण करती रहें। ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही, नारसिंही आदि सभी देवियाँ अधिकाधिक आभूषणधारिणी हैं। ये सभी देवियाँ समस्त दिशाओं-विदिशाओं में अपने-अपने शस्त्रों के द्वारा मेरी रक्षा करती रहें। हे भैरवि! मैंने परम विस्मयकारी इस दिव्य कवच का आपके सम्मुख कथन किया।।२३-२५।।

फलश्रुतिः

श्रीजगन्नमङ्गलं नाम महाविद्यौघविग्रहम् ।
त्रैलाक्याकर्षणं ब्रह्मन् ! कवचं मन्मुखोदितम् ।।१।।
गुरुपुजा विधायाऽथ विधिवत् प्रपठेत्ततः ।
कवचं त्रिसकृद् वाऽपि यावज्जीवं च वा पुनः ।।२।।

भैरव ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से कहा– हे ब्रह्मन्! सम्पूर्ण महाविद्याओं का समूह विग्रहरूप मेरे द्वारा वर्णित इस त्रैलोक्याकर्षण रूप श्री जगन्मंगल नामक कवच का विधिवत् पूजन-अर्चन कर गुरु की पूजा करें। पुनः जीवन-पर्यन्त तीनों सन्ध्याओं में इस कवच का पाठ करता रहे।।१-२।।

एतच्छतार्धमावृत्य त्रैलोक्च- विजयी भवेत् ।
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादतः ।।३।।

इस कवच की पचास बार आवृत्ति कर लेने से वह साधक त्रैलोक्यविजेता बन जाता है। और इस कवच के प्रभाववश वह त्रिभुवन को क्षुभित कर देने में समर्थ हो जाता है।।३।।

महाकविर्भवेन्मासं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
पुष्पाञ्जलिं कालिकायै मूलेनैवाऽर्पयेत् सकृत् ।।४।।
शतवर्ष सहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
भूर्जे विलिखितं चैतत् स्वर्णस्थं धारयेद् यदि ।।५।।
विशाखायां दक्षबाहौ कण्ठे वा धारयेद् यदि ।
त्रैलोक्यं मोहयेत् क्रोधात् त्रैलोक्यं चूर्णयेत् क्षणात् ।।६।।

जो साधक निरन्तर एक मास तक इस कवच का पाठ करता है वह सम्पूर्ण सिद्धियों को हस्तगत करके स्वयं महान कवि बन जाता है। मूलमन्त्र के साथ एक बार कालिका देवी को पुष्पांजलि अर्पित करने से वह एक सौ तथा एक हजार वर्ष तक पूजन किये जाने का फल पा लेता है।

यदि इस कवच को भोजपत्र पर लिखकर सोने के ताबीज में मढ़वा ले और उसे विशाखा नक्षत्र आने पर अपनी दाहिनी भुजा या कण्ठ में धारण करे तो वह साधक तीनों लोकों को विमुग्ध कर लेता तथा क्रोधावस्था में तत्काल ही त्रिभुवन का विनाश भी कर सकता है।।४-६।।

पुत्रवान् धनवान् श्रीमान् नानाविद्यानिधि र्भवेत् ।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद् गात्र स्पर्शनात्ततः ।।७।।

नाशमायाति या नारी बन्ध्या वा मृतपुत्रिणी ।
बह्वपत्या जीवतोका भवत्येव न संशयः ।।८।।

इस कवच का धारक पुत्रवान, धनवान, ऐश्वर्यवान एवं विविध विद्याओं ां पारंगत होता है। ऐसे साधक के शरीर से स्पर्श करने पर अव्यर्थ शस्त्र ब्रह्मास्त्र ी नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते । इस कवच ो धारण करने से बन्ध्या अथवा मृतपुत्रिणी (जिसके पुत्र जीवित न रहते हों) त्री भी निःसंशय अनेक पुत्रों की माता बनती है ।।७-८।।

न देयं परशिष्येभ्यो ह्यभवतेभ्यो विशेषतः ।
शिष्येभ्यो भक्तियुक्तेभ्यो ह्यन्यथा मृत्युमाप्नुयात् ।।९।।
स्पर्धामुद्धय कमला वाग्देवी मन्दिरे सुखे ।
पौत्रान्तं स्थैर्यमास्थाय निवसत्येव निश्चितम् ।।१०।।

स्वयं द्वारा उपदिष्ट शिष्य के अतिरिक्त किसी अन्य के शिष्य को मुख्यतया श्रद्धाभक्तिविहीन अथवा नास्तिक शिष्य को तो कदापि यह कवच नहीं बतलाना चाहिए।केवल श्रद्धान्वित तथा विनम्र शिष्य से ही इसे कहना उचित है। इसके विरुद्ध आचरण करने से साधक की मृत्यु अवश्यंभावी होती है।

लक्ष्मी तथा सरस्वती देवी भी इस कवच को धारण करने पर परस्पर के विद्वेष को त्याग कर साधक के समीप तीन पीढ़ियों तक स्थिरता के साथ निवास करती हैं।।९-१०।।

इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेत् घोरदक्षिणाम् ।
शतलक्षं प्रजप्त्वाऽपि तस्य विद्या न सिध्यति ।
सहस्रघातमाप्नोति सोऽचिरान् मृत्युमाप्नुयात् ।।११।।

इस कवच का ज्ञान प्राप्त किये बिना जो उपासक घोर दक्षिण काली की साधना का प्रयोग कर बैठता है तो उसे करोड़ बार काली मन्त्र का जाप कर लेने पर भी सिद्धि नहीं मिलती । इसके अतिरिक्त ऐसा साधक हजारों बार दुर्घटना का शिकार भी होता रहता है। इतना कष्ट भुगतने के पश्चात् वह शीघ्र ही मृत्यु का भी वरण कर लेता है।।११।।

इति कालीकवचं सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार काली कवच की पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

◆

अथ मुद्रालक्षणम्

विविध प्रकार के पूजन में विविध प्रकार की मुद्राओं का प्रयोग कि
जाता है। जो निम्न प्रकार से कहीं गयी हैं।

महायोनि मुद्रा

महायोनिरितीख्याता सर्वसिद्धि समृद्धिदाः ।
शक्त्यर्चने महायोनिः श्यामादौ मुण्डमुद्रिका ।।

महायोनि मुद्रा का प्रयोग समस्त सिद्धियों की प्राप्ति एवं ऐश्वर्य के लि किया जाता है। शक्ति की अर्चना के निमित्त शाक्त उपासक इसी मुद्रा का प्रयो करता है। श्यामा (दश महाविद्याओं में से एक) आदि देवियों के पूजन मुण्डमुद्रा का प्रयोग उचित कहा गया है।

तर्जन्यनामिकामध्ये कनिष्ठा क्रम योगतः ।
कारयोर्योजयत्येव कनिष्ठामूलदेशतः ।
अङ्गुष्ठाग्रे तु निःक्षिप्य महायोनि प्रकीर्तिता।।

अर्थात् दोनों हाथों की तर्जनी, मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा उँगलि को परस्पर एक दूसरे से संयुक्त कर दोनों हथेलियों को इस प्रकार से सम्मिलि कर दे कि उनका निचला भाग एक दूसरे को पूर्ण रूप से स्पर्श करता र इसके अनन्तर दोनों अंगूठों को अपनी कनिष्ठाओं के मूल पर्वों (पोरों) पर र इसी को महायोनि मुद्रा की संज्ञा दी गयी है ।

मुण्डमुद्रा

पृष्ठेक्रीडांतरेङ्गुष्ठ मुष्टिं कृत्वा करस्य च ।
मध्यमाग्रं तु दक्षस्य तथालम्ब्य प्रयत्नतः ।।
मध्यमेनाथ तर्जन्यामङ्गुष्ठाग्रे तु योजयेत् ।
दक्षिणं योजयेत् पाणिं वाममुष्टौ तु साधकः ।
दर्शयेद्दक्षिणे भागे मुण्डमुद्रेयमुच्यते ।।

सर्वप्रथम अँगूठे को भीतर की ओर करके बाएँ हाथ की मुट्ठी बन्द लें। इसके बाद दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा अंगुली थोड़ा-थोड़ा मोड़ लें। दाहिने अंगूठे को दाहिनी तर्जनी उँगली के बीच वाले

र रखें। इस प्रकार संयोजन करके दाहिने हाथ पर बंधी हुई बायीं मुट्ठी लगावें। पुन: इस प्रकार रखे गये हाथों के दाहिनी ओर साधक अपनी दृष्टि एकाग्र करे। यही वह मुण्डमुद्रा है जिसे श्यामा देवी के पूजन-काल में प्रयुक्त किया जाता है।

योनिमुद्रा

मिथः कनिष्ठिके बद्धवा तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकेर्ध्वसंश्लिष्टे दीर्घमध्यमयोरथ ।
अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद्योनिमुद्रेयमीरितः ।।

दोनों कनिष्ठा अंगुलियों, तर्जनी और अनामिकाओं को बाँध ले। अनामिका अंगुली को थोड़ा मध्यमा से मिलायें और पुन: उन्हें सीधा छोड़ दे। अब दोनों अँगूठों को एक दूसरे के ऊपर रख ले। इसे ही योनिमुद्रा के नाम से जाना जाता है।

लिङ्गमुद्रा

महादेवप्रियाणां च कथ्यन्ते लक्षणान्यथ ।
उच्छित्तं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामाङ्गुष्ठेन बन्धयेत् ।
वामाङ्गुली र्दक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्च बन्धयेत् ।
लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ।।

दाहिने हाथ के अँगूठे को ऊपर की ओर उठा कर उसे बाएँ अँगूठे से बाँध लेवें। तदनन्तर दोनों हाथों की उँगलियों को परस्पर एक दूसरे से बाँध डालें। यह शिवसान्निध्य प्राप्त कराने वाली लिंगमुद्रा कही जाती है। शक्ति उपासक लिंगपूजन में इसी का प्रयोग करता है।

वरमुद्रा

अधः स्थितो दक्षहस्तः प्रसृतो वरमुद्रिका ।

अर्थात् दाहिनी हथेली को नीचे की ओर करके हाथ को विस्तीर्ण करे। इसे वरमुद्रा कहा गया है।

अभयमुद्रा

ऊद्ध्वींकृतो वामहस्तः प्रसृतोभयमुद्रिका ।

अर्थात् बाएँ हाथ को ऊपर की ओर उठाकर हथेली को विस्तृत क
अभयमुद्रा हो जाती है।

सर्वसंक्षोभकारिणी मुद्रा

मध्यमा मध्यगे कृत्वा कनिष्ठेङ्गुष्ठ रोधिते ।
तर्जन्यौ दण्डवत् कुर्यान् मध्यमोपर्यनामिके ।
एषा च प्रथमा मुद्रा सर्वसंक्षोभकारिणी ।।

मध्यमा अंगुली को बीच में रखकर अँगूठों तथा कनिष्ठाओं को पर
मिलावें। अब तर्जनी को सीधा एवं अनामिका को मध्यमा के पास रख लें।

सर्वविद्रावणी मुद्रा

एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले तथा ।
क्रियेते परमेशानि सर्वविद्रावणी परा ।।

उपर्युक्त मुद्रा में मध्यमा अंगुली को ढीला कर देने से ही सर्वविद्राव
मुद्रा हो जाती है।

आकर्षिणी मुद्रा

मध्यमातर्जनीभ्यां च कनिष्ठानामिके समे ।
अङ्कुशाकार रूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ।
अङ्गुष्ठं तु नियुञ्जीत कनिष्ठानामिकोपरि ।
इयमाकर्षिणीमुद्रा त्रैलोक्याकर्षिणी मता ।।

अर्थात् कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा तथा तर्जनी को समानान्तर कर
मध्यमा अँगुली को अंकुश के आकार में बना ले। तत्पश्चात् उसे कनिष्ठा ए
अनामिका पर रखे। और उससे अंगूठे को योजित कर दे । हे परमेश्वरि! य
त्रिभुवन को आकर्षित करने वाली आकर्षिणी मुद्रा है।

सर्ववश्यकरी मुद्रा

पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशा कृती ।
परिवर्तक्रमेणैव मध्यमे तदधोगते ।
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिकादयः
संयोज्या निबिडा सर्वा अङ्गुष्ठावग्रदेशतः ।
मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरी मता ।।

हे देवि! पहले दोनों हाथों को एक में मिलाकर सम्पुट बना लें। पुनः र्जनियों को अंकुशाकर कर लें। इसी भाँति मध्यमा, कनिष्ठा तथा अनामिकाओं ो भी मोड़ लें। तदनन्तर समस्त अंगुलियों को अँगूठे के अग्र भाग से घनीभूत रूप में मिला दें। इस मुद्रा के द्वारा सम्पूर्ण संसार वशीभूत हो जाता है। इसी कारण इसे सर्ववश्यकरी मुद्रा कहते हैं ।

उन्मादिनी मुद्रा

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यममामध्यगेंत्यजे ।
अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम् ।
दण्डाकारौ ततोङ्गुष्ठौ मध्यमानखदेशिकौ ।
मुद्रैवोनमादिनी नाम्ना क्लेदिनी सर्वयोषिताम् ।।

अर्थात् दोनों हाथों को सामने करके मध्यमा को मध्यमा से औंर कनिष्ठा को कनिष्ठा के साथ मिला दे। अब अनामिकाओं को सीधा रखकर परस्पर युक्त करे तथा दोनों हाथ की तर्जनियों को बाहर ही रखें ताकि अँगूठों को मध्यमाओं के नख पर सीधा रखा जा सके। यह समस्त नारियों को उन्मत्त कर देने वाली उन्मादिनी मुद्रा कही जाती है ।

महाङ्कुशा मुद्रा

अस्या त्वनामिका युग्ममधः कृत्वाङ्कुशाकृति ।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् ।
इत्थं महाङ्कुशा मुद्रा सर्वकामार्थसाधिनी ।।

दोनों अनामिका उँगलियों को अंकुशाकार बनाकर नीचे की ओर मुँह करके मिला दें। पुनः दोनों तर्जनियों को भी पूर्व की भाँति अंकुशाकार करके मिलायें। समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली यह महांकुशा मुद्रा कही जाती है ।

खेचरी मुद्रा

सव्यं दक्षिणदेशेषु सव्यदेशे तु दक्षिणम् ।
बाहुं कृत्वा महादेवि! हस्तौ सम्परिवर्तयेत् ।।
कनिष्ठानामिके देवि! मुक्ते तेन क्रमेण च ।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोद्र्ध्वमपि मध्यमे ।।

अङ्गुष्ठौ च महादेवि! सरलावपि कारयेत्।
इयं सा खेचरी मुद्रा सर्वोत्तमा मता।।

हे महादेवि! बाएँ हाथ को दाहिनी ओर और दाहिने हाथ को बायीं ओर रखकर इसी क्रमानुसार कनिष्ठा और अनामिका उँगलियों को परस्पर संयोजित करें। अब दोनों तर्जनियों को एक दूसरे के ऊपर रख छोड़े। दोनों मध्यमाओं को सबसे ऊपर उठा ले तथा अंगूठों को सीधा रखें तो यह सर्वश्रेष्ठ खेचरी मुद्रा कही जाती है।

बीजमुद्रा

परिवृत्यकरौ स्पृष्टावर्द्धचन्द्राकृती प्रिये।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपत् कारयेत्ततः।।
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत्।
अथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तदनामिके।
बीजमुद्रेयमचिरीत् सर्वसिद्धिप्रदायिनी।।

समस्त सिद्धियों को देने वाली बीजमुद्रा के लिए परस्पर एक दूसरे को काटते हुए हाथों को चन्द्राकार रूप में बनावें। दोनों अँगूठों को अपनी-अपनी तर्जनियों के साथ योजित करें। तदनन्तर दोनों कनिष्ठिकाओं को भी मध्यमा अँगुलियों के साथ समायोजित करें। इसी भाँति अनामिकाओं को भी सबसे नीचे थोड़ा सिकोड़ कर सम्मिलित कर लें।

त्रिखण्ड मुद्रा

परिवृत्तकरौ स्पृष्टावङ्गुष्ठौ कारयेत् समौ।
अनामान्तर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृती।
कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने महेश्वरि!
त्रिखण्डेयं समाख्याता त्रिपुराध्यानकर्मणि।।

दोनों हाथों को एक दूसरे के विपरीत दिशा में अर्थात् दाहिने हाथ को बायीं ओर और बाएँ को दाहिनी ओर करके पृष्ठभाग में रखें। अँगूठे को बराबर भाग में मिला लें। अनामिका उँगली को भीतर की ओर विस्तृत करें और तर्जनियों को कुछ मोड़ लें। कनिष्ठाओं को भी अपने स्थान में मिला दें। इस मुद्रा का प्रयोग त्रिपुरा देवी के ध्यान के निमित्त किया जाता है।

संहार मुद्रा

अधोमुखे वामहस्ते ऊर्ध्वं स्याद् दक्षहस्तकम् ।
क्षिप्त्वाङ्गुलीरङ्गुलीभिः संग्रथ्य परिवर्तयेत् ।
एषा संहारमुद्रा स्याद् विसर्जनविधो स्मृता ।।

बाएँ हाथ को नीचे की ओर मुँह करके ऊपर उठे हुए दाहिने हाथ पर खें। अब दोनों हाथ की अंगुलियों को एक में ग्रथित कर लें । इस प्रकार से मिलित हाथों को घुमाकर एकदम पलट देना चाहिए। देवपूजन के पश्चात् वसर्जन हेतु इस मुद्रा का प्रयोग होता है ।

मुसल मुद्रा

मुष्टिं कृत्वा कराभ्यां च वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कुर्यान् मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ।।

दोनों हाथ की मुट्ठियों को बाँधकर दाहिनी मुट्ठी को बायीं पर रखना ाहिए। सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओं को दूर करने वाली यह मुसल मुद्रा के नाम से ानी जाती है ।

प्रार्थना मुद्रा

प्रसृताङ्गुलिकौ हस्तौ मिथः श्लिष्टौ च सम्मुखौ ।
कुर्यात् स्वहृदये सेयं मुद्रा प्रार्थनसंज्ञिका ।।

दोनों हाथों को फैलाकर हृदय पर रख लेना ही प्रार्थना मुद्रा कही जाती है ।

अथ मुद्रालक्षणं सम्पूर्णम् ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में उल्लिखित कुछ प्रमुख शब्दों के भावार्थ

पञ्च मकार

तन्त्र-साधना में पाँच मकारों का अवलम्बन करना ही पञ्च मकार तथ पंचतत्त्व के नाम से जाना जाता हैं, जैसे– मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन

मद्य - (मदिरा) ब्रह्मरन्ध्र से निरन्तर प्रवाहित होने वाले चन्द्रामृत क पान साधक द्वारा किया जाना ही मद्य है। अर्थात् साधक द्वारा परमात्मा स साक्षात्कार होना ही मदिरापान है ।

मांस - शक्ति उपासना काल में जो साधक किसी व्यक्ति से कोई बात न करे अर्थात् मौनव्रत धारण कर अपनी सांधना में निरत रहे वही मांसभक्षक साधक है ।

मत्स्य - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य- इन छह शत्रुअ का समूह ही मत्स्यस्वरूप है। इन्हें अपने वश में करना ही मत्स्यसाधना है अथवा शरीरस्थ इड़ा-पिंगला नाड़ियों द्वारा जो श्वास-प्रश्वास निरन्तर प्रवाहित होता रहता है वही मीनरूप है। इस पर कुम्भक प्राणायाम (प्राणायाम की एक प्रक्रिया जिसमें श्वास को ऊपर खींचकर रोक रखा जाता है।) द्वारा नियन्त्रण रखना ही साधक के लिए मत्स्य-साधना मानी जाती है ।

मुद्रा - आशा-निराशा, तृष्णा,घृणा, लज्जा, भय आदि मनोवृत्तियों क दमन करना ही मुद्रा है। अथवा आत्मा से साक्षात्कार करना ही मुद्रा-साधन कह गया है ।

मैथुन - समस्त जीवधारियों के शरीर कुण्डलिनी शक्ति से समन्वि होते हैं। अतः उस शक्ति के साथ शिव का मिलन ही मैथुनस्वरूप है। अत्यन्त सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी ही देह में रमणीस्वरूपा है। उसके साथ एकाकार होना ह साधक के लिए मैथुन माना जाता है ।

कौलिक

ऐसा शक्ति उपासक जो शिव एवं शक्ति में किसी प्रकार का भेदभाव रखता हो उसे ही कौलिक कहा जाता है। उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ— इसन ये तीन भेद बतलाये गये हैं ।

कुलाङ्गना

तन्त्रपद्धति को अपनाना अथवा योगविद्या का ग्रहण ही कुलाङ्गना है।

महाविद्या

त्रिपुरसुन्दरी (षोडशी), भुवनेश्वरी, त्रिपुरभैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, तारा, काली, बगलामुखी, मातंगी तथा कमलात्मिका (लक्ष्मी) - ये दश देवियाँ महाविद्या के नाम से जानी जाती हैं। इन सभी देवियों का पूजन कुलाचार रीति से सम्पन्न करने का विधान है ।

तन्त्रशास्त्र में कहा गया है–

आलिङ्गनं चुम्बनं च स्तनयोर्मर्दनं ततः ।
दर्शनं स्पर्शनं योनेर्विकारं लिङ्गघर्षणम् ।
प्रवेशं स्थापनं शक्तेर्नवपुष्पाणि पूजने ।।

शक्ति-पूजनकाल में आलिंगन, चुम्बन, कुचमर्दन,दर्शन, स्पर्शन, योनि का विकार, लिंगघर्षण, लिंगप्रवेश तथा स्थापन आदि पूजा के निमित्त नव प्रकार के पुष्पस्वरूप माने गये हैं ।

योगिनीहृदयम्

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी

योगिनी हृदय, श्रीविद्याप्रतिपादक एक प्रामाणिक ग्रंथ ही नहीं अपितु श्री विद्या का मूर्त्तरूप ही है। यन्त्र, मन्त्र और याग (पूजा) से सम्बन्धित संकेतों (रहस्यों) का चक्रसंकेतनिरूपण, मन्त्रसंकेतनिरूपण, पूजासंकेतनिरूपण नामक अपने तीन पटलों के कारण यह स्वयं त्रिपुर हो त्रिपुरा स्वरूप हो गया है। इसका त्रिपुरा से सम्बन्धित तन्त्र ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

श्री चक्र के सन्दर्भ में यह त्रिपुरोपनिषद् का विशद रूप ही सिद्ध होता है। यह वामकेश्वर तन्त्र अथवा नित्याषोडशिकार्णव के अनेक अज्ञातार्थों का बोधक, महागुह्य, त्रिपुरसुन्दरी का हृदयभूत ग्रन्थ है। इसकी संस्कृत की कई टीकाएँ थीं तथापि सेतुबन्ध टीका और कल्याणी हिन्दी टीका से समलङ्कृत प्रस्तुत संस्करण श्री विद्योपासकों हेतु श्रीमद्भगवद्गीता, दुर्गासप्तशती की भांति ही उपयोगी सिद्ध होगा। इसके ज्ञान से श्री साधना का रहस्य बोध सहजता से सम्भव है। **मूल्य : रु. 160.00**

आगमरहस्यम् (शैवागमान्तर्गतम्)। पं. श्री सरयूप्रसाद द्विवेदविरचितम्। 'सुधा' हिन्दी व्याख्या परिशिष्ट सहित। सम्पादक एवं व्याख्याकार–डॉ. सुधाकर मालवीय
पूर्वार्द्ध 475.00 उत्तरार्द्ध — शीघ्र

कौलावलीनिर्णयः। श्रीमज्ज्ञानानन्दपरमहंसविरचितः । (कौलसम्प्रदायान्तर्गतः) 'निरञ्जन' हिन्दी व्याख्योपेतः। व्या.— पं. रामरञ्जन मालवीय सम्पादकः भूमिका-लेखक—डॉ. सुधाकर मालवीय — 450.00

कुलार्णवतन्त्रम्। (ऊर्ध्वाम्नायतन्त्रात्मकम)। 'कल्याणी' हिन्दी टीका सहित । संपा. एवं अनु. पं. चितरंजनमालवीय एवं डॉ. सुधाकर मालवीय — 225.00

ज्ञानार्णवतन्त्रम्। ईश्वरप्रोक्त । संपादक : हिन्दीव्याख्याकारश्च पं. रामरंजन मालवीय, डॉ. सुधाकर मालवीय — 225.00

श्रीमाहेश्वरतन्त्रम्। अपौरुषेयम् नारदपाञ्चरात्रान्तर्गतम् । 'सरला' हिन्दी व्याख्योपेतम् । संपादक व्याख्याकार— डॉ. सुधाकर मालवीय — 250.00

योगिनीतन्त्र। पार्वतीसुतनित्यनाथसिद्धमत्स्येन्द्रविरचित । हिन्दी टीका सहित । टीकाकार— पं. हरिहरप्रसाद त्रिपाठी — 200.00

लक्ष्मीतन्त्रम्। पाञ्चरात्रागमान्तर्गतं । 'सुधा' हिन्दी व्याख्योपेतम् । सम्पादक एवं व्याख्याकार–डॉ. सुधाकर मालवीय — 450.00

Also can be had from : **Chowkhamba Sanskrit Series Office,** Varanasi.

ISBN : 978-81-218-0104-4

designed by Shreyashi GRAPHICS, mo. 9830814784